ISSN: 3049-2211

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

खंड-1, अंक-5 मई- 2025

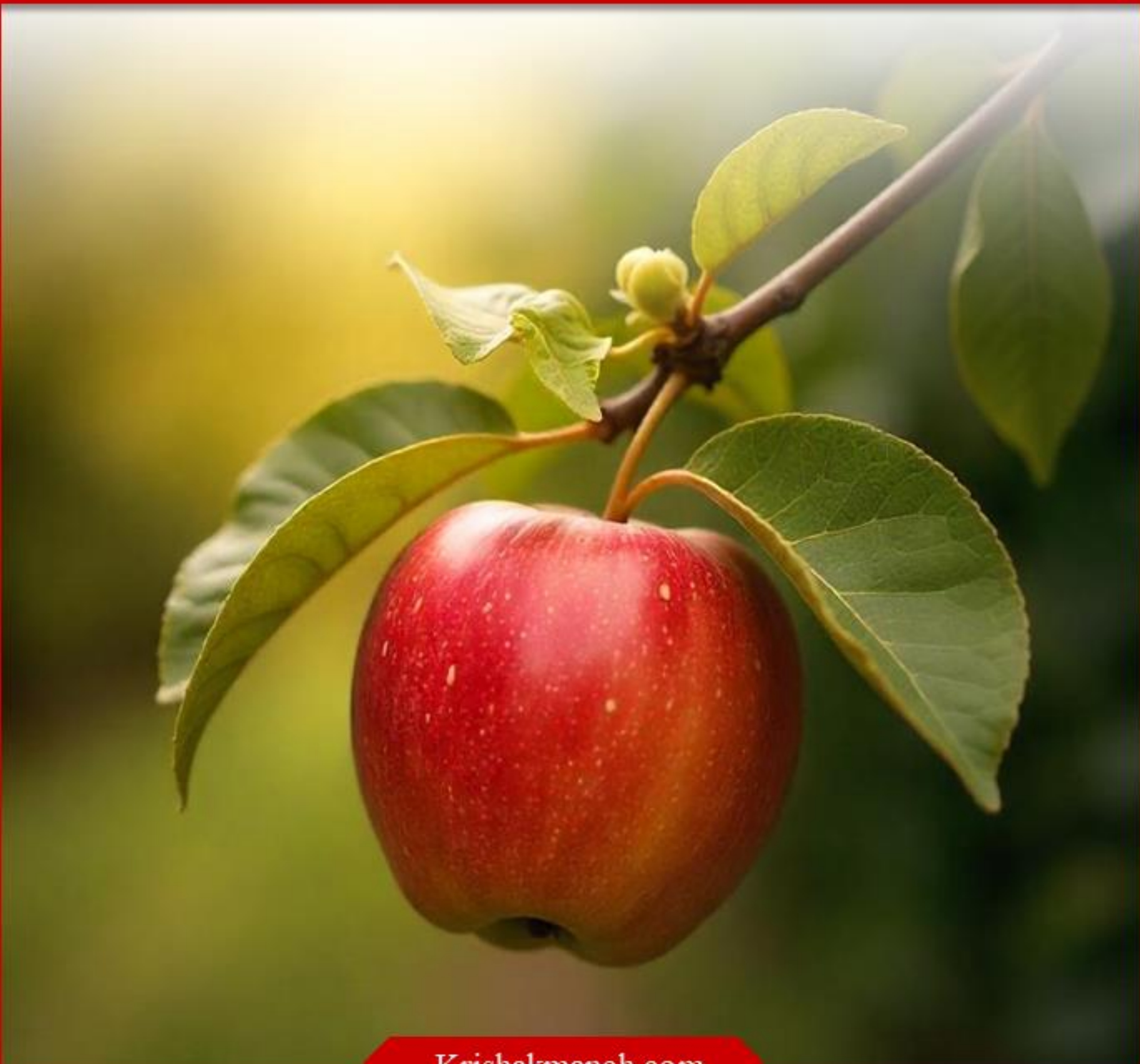

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

ISSN: 3049-2211

सम्पादक मंडल

डा. देवराज सिंह

मुख्य सम्पादक
सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष
सब्जी विज्ञान विभाग
कृषि विज्ञान विभाग, इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

प्रिया पाण्डेय

सहायक मुख्य सम्पादक
शोधार्थी
ए.के.एस. विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)।

सहायक सम्पादक

डा. विक्रमा प्रसाद पाण्डेय
पूर्व अधिष्ठाता (उद्यान महाविद्यालय)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

डा. अरविन्द कुमार चौरसिया
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)

डा. महेन्द्र कुमार यादव
सहायक प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

डा. वर्तिका सिंह
सहायक प्राध्यापक (फल विज्ञान)
आई.टी.एम. विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

डा. रविशंकर पटेल
सहायक प्राध्यापक (कीट विज्ञान)
स.व.भा.प.कृ. एवं प्रौ. वि.वि., मेरठ (उ.प्र.)

डा. रविकेश कुमार पाल
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
रामा विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

डा. सरिता जागरा
सहायक प्राध्यापक (पौध रोग विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

डा. सचि गुप्ता
सहायक प्राध्यापक (पुष्प विज्ञान)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

डा. विवेक पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)

डा. देवेश तिवारी
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, तूरा कैंपस (मेघालय)

डा. कुमार अंशुमान
सहायक प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)
के.एन.आई.पी.एस.एस., सुल्तानपुर (उ.प्र.)

डा. मंजीत कुमार
सहायक प्राध्यापक
लिंगायस विद्यापीठए फरीदाबाद, हरियाणा

श्री कल्याण सिंह
स्वतंत्र लेखक / शोधार्थी
बांदा कृ. एवं प्रौ. वि.वि., बांदा (उ.प्र.)

विषय वस्तु

क.सं.	विवरण	पृष्ठ सं.
1	कृषि में लाभकारी जीव खादों का महत्व।	4
2	छत्तीसगढ़ में सेब की खेती का संभावित आर्थकि योगदान।	5–6
3	किसानों के कल्याण हेतु अमरूद उत्पादन के लिए उन्नत और उच्च तकनीके।	7–8
4	कृषि उद्यमियों के लिए टिश्यू कल्चर लैबः नया व्यवसायिक अवसर।	9–11
5	जल संरक्षण व सिंचाई तकनीकें।	12–13
6	लाख की खेतीः ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती देने का सशक्त माध्यम।	14–15
7	ग्रो बैग मे लिलियम फूलों की उन्नत खेती।	16–17
8	मध्य भारत में खरीफ ज्वार की उन्नत खेती विधि, जलवायु एवं लाभ।	18
9	कृषि प्रगति में प्रौद्योगिकी की अहम् भूमिका।	19–20
10	ड्रैगन फ्रूट की वैज्ञानिक खेतीः उत्तर प्रदेश में किसानों के लिए कमाई का नया स्रोत।	21–22
11	नरमे के रोग और उनका निवारण।	23
12	जैविक खेती में जैव कीटनाशकों का महत्व।	24–25
13	गेहूँ के एफिड्स और उनका एकीकृत प्रबंधनः भारतीय कृषि पर ध्यान केंद्रित करने वाले वैश्विक परिप्रेक्ष्य।	26

ISSN: 3049-2211

कृषि मे लाभकारी जीव खादों का महत्व

पूजा, प्रशांत चौहान
पादप रोग विभाग
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसकी लगभग दो–तिहाई जनसंख्या कृषि पर आधारित हैं। कृषि में उपज को बढ़ाने के लिए विभिन्न रासायनिक खादों का प्रयोग होता है। जो की भूमि की उपजाऊ शक्ति कम करने के साथ साथ पर्यावरण को भी प्रदूषित करते है। इसलिए कृषि में लाभकारी जीवो का बहुत महत्व है, जो की जमीन की उपजाऊ शक्ति व जैविक शक्ति के साथ साथ प्रदूषण रहित वातावरण बनाए रखती हैं। इसके प्रयोग से नाइट्रोजन व फास्फोरस वाली रासायनिक खादें जैसे यूरिया एवं सिंगल सुपर फास्फेट की कम से कम 25% की बचत की जा सकती है, इसके अतिरिक्त 5–15% तक फसलों की पैदावार बढ़ाई जा सकती है। कुछ लाभकारी जीव इस प्रकार हैं:

माइकोराइजा

माइकोराइजा, पौधों की जड़ों एवं कवक के संगठन को कहते है। जिसके द्वारा पौधों एवं जड़ों के बीच खनिज ओर गैसों का आदान प्रदान होता है। माइकोराइजा पौधों की बढ़वार के साथ– साथ उनमें रोग रोधक क्षमता को भी बढ़ाता है। माइकोराइजा के इस्तेमाल से न सिर्फ पौधों बल्कि भूमि को होने वाले लाभ इस प्रकार हैं–

- जड़ों का अच्छा विकास करता है जिससे उसकी खनिज तत्व ग्रहण करने की क्षमता मे बढ़ोतरी होती है।
- पौधों की रोग रोधी क्षमता को बढ़ाने के साथ साथ उनको सूखे सहन करने की क्षमता मे भी इजाफा होता है।
- मुख्य रूप से फास्फोरस को पौधों के लिये उपलब्ध करता है।
- फसल की उपज मे बढ़ोतरी करता है।

राइजोटीका

राइजोबियम एक विशिष्ठ प्रकार के जीवाणु है, जो मुख्य रूप से फलीदार पौधों की जड़ों पर गुलाबी रंग की ग्रंथियां बनाते हैं। यह वायुमंडल की नाइट्रोजन को अमोनिया में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार यह जीवाणु न केवल फलीदार पौधों की नाइट्रोजन की आवश्यकता पूरी करते हैं, बल्कि बाद में बोई जाने वाली फसलों के लिए भी नाइट्रोजन उपलब्ध करवाते हैं।

एजोटीका

एजोटोबैक्टर, स्वतंत्र रूप से कार्य करने वाला जीवाणु हैं। यह वायु से नाइट्रोजन खींचकर पौधे के ग्रहण करने योग्य बनाते हैं। औपचारिक बीजों को अंकुरण में सहायता मिलती है। इसके अलावा एजोटीका के जीवाणु जड़ों के पास मिट्टी में रासायनिक पोषक तत्व भी उपलब्ध करवाते हैं, और जड़ों में होने वाली संबंधी की बीमारियों से भी बचाने में सहायक होता है।

फास्फोटीका

फास्फोटीका के जीवाणु मिट्टी में पाए जाने वाले फास्फोरस को शीघ्र ही घोल के रूप में परिवर्तित कर देते हैं जिससे पौधे की जड़े आसानी से शोषण कर लेती है। इससे फसलों की पैदावार में वृद्धि होती है। फास्फोटीका का सभी फसलों में बीजों पर तथा रोपण के समय पौधों की जड़ों पर भी उपचारित किया जा सकता है।

बायोटीका

बायोटीका का इस्तेमाल कपास में सूत्र कर्मी द्वारा जड़ गठन रोग के रोकथाम में की जा सकती है, इसमें ग्लूकोनएसीबैक्टर नामक जीवाणु होते हैं। इसी प्रकार गेहूं में मोल्या रोग की रोकथाम के लिए यह एजोटीका–54 का इस्तेमाल किया जा सकता है।

ISSN: 3049-2211

छत्तीसगढ़ में सेब की खेती का संभावित आर्थकि योगदान

प्रज्ञा महोबे एवं बी. वी. कुरुवंशी
पादप कार्यिकी, कृषि जैव रसायन, औषधीय एवं सुगंधित पौधे विभाग,
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़।

परिचय

सेब की खेती एक कृषि आधारित व्यवसाय है, जो छत्तीसगढ़ में आर्थिक विकास और किसानों की आय में वृद्धि का महत्वपूर्ण साधन बन सकता है। सेब, जो दुनिया में सबसे अधिक उपभोग होने वाला फल है, अपने पौष्टिक गुणों के कारण व्यापक रूप से बिकता है। इस लेख में हम छत्तीसगढ़ में सेब की खेती की संभावनाओं और इसके आर्थिक लाभों पर चर्चा करेंगे, जो राज्य की अर्थव्यवस्था, किसानों और पर्यावरण के लिए लाभकारी हो सकते हैं।

छत्तीसगढ़ में सेब उत्पादन

छत्तीसगढ़, अपनी विविध जलवायु परिस्थितियों और उपजाऊ मृदा के कारण, सेब की खेती के लिए बहुत उपयुक्त है। विशेष रूप से कोरबा, जशपुर, कांकेर, महासमुंद, बस्तर और राजनांदगांव जैसे इलाकों में सेब की खेती की संभावना अधिक पाई जाती है। इन क्षेत्रों में तापमान और मिट्टी की गुणवत्ता सेब के पौधों के लिए अनुकूल है। इसके अलावा, पानी की उपलब्धता भी सेब की खेती के लिए सहायक है।

ऐतिहासिक रूप से छत्तीसगढ़ में सेब की खेती नहीं की जाती थी, लेकिन हाल के वर्षों में राज्य सरकार और कृषि संस्थानों के प्रयासों से सेब की खेती में रुचि बढ़ी है। अब किसानों को उन्नत कृषि तकनीकों जैसे ड्रिप सिंचाई, कीट नियंत्रण और रोग प्रबंधन के उपायों से परिचित कराया जा रहा है, जिससे सेब की उपज में सुधार हो रहा है।

छत्तीसगढ़ में उगाई जा सकने वाली सेब की किस्में

एच.आर.एम.एन.-99

यह एक लो चिलिंग वैरायटी है, जिसे हिमाचल के एक सान श्री हरीमणि शर्मा ने विकसित किया है। यह 400 घंटे से भी कम चिलिंग में फल दे सकती है। मैदानी और गर्म जलवायु में उगाई जा सकती है।

अन्ना

यह इज़राइल से आई वैरायटी है। कम चिलिंग की ज़रूरत होती है, इसलिए गर्म प्रदेशों में उगाई जाती है।200–300 घंटे की चिलिंग पर्याप्त होती है।

डॉर्सेट गोल्डन

यह भी कम चिलिंग वैरायटी है। गर्म जलवायु में अच्छी उपज देती है। इसके फल जल्दी पकते हैं।

छत्तीसगढ़ में सेब की खेती के लाभ

1. आर्थिक योगदान– सेब की खेती राज्य की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। यह किसानों की आय को बढ़ाने के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उत्पन्न कर सकती है और शहरी क्षेत्रों में पलायन को भी कम कर सकती है।

2. जलवायु परिवर्तन से निपटने का उपाय– सेब की खेती सूखे और अन्य प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में भी आय का स्रोत प्रदान कर सकती है, जिससे किसानों की आर्थिक स्थिति स्थिर रहती है।

3. अन्य फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं– सेब की खेती सीमांत भूमि पर की जा सकती है, जिससे यह अन्य फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं करती। इसे बागवानी और अन्य कृषि फसलों के साथ संयोजन में उगाया जा सकता है।

4. उच्च बाजार मांग– सेब का उपयोग घरेलू और अंतरराष्ट्रीय बाजारों में किया जाता है। सही खेती विधियों के साथ, छत्तीसगढ़ सेब की ताजगी और प्रसंस्कृत उत्पादों के लिए अच्छा बाजार पा सकता है।

5. पर्यावरणीय लाभ– सेब की खेती पर्यावरण के लिए लाभकारी है, क्योंकि यह मृदा अपरदन को रोकने और स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र को बनाए रखने में मदद करती है। सेब के पेड़ वायू को शुद्ध करने में भी सहायक होते हैं।

6. महिलाओं के लिए रोजगार– सेब की खेती महिलाओं को भी रोजगार प्रदान करती है, जिससे ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाया जा सकता है।

7. मूल्यवर्धित उत्पाद– ताजे सेब के अलावा, सेब का जूस, साइडर, सूखे सेब, जैम जैसे मूल्यवर्धित उत्पादों के निर्माण के लिए भी अवसर उपलब्ध हैं, जिससे किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है।

किसान का अनुभव

छत्तीसगढ़ में सेब की खेती अभी शुरुआती स्तर पर है, लेकिन कुछ प्रगतिशील किसानों ने कम ठंडे मौसम में उगने वाली सेब की किस्मों को अपनाकर अच्छी सफलता हासिल की है। नीचे एक किसान के अनुभव और उसकी खेती का स्थान दिया गया है॰ खेती अभी प्रयोगात्मक और छोटे स्तर पर है। एच.आर.एम.एन.–99, अन्ना, डॉर्सेट गोल्डन जैसी कम चिलिंग वाली किस्में ही सफल हो रही हैं। अधिकतर किसानों ने 20–100 पौधों से शुरुआत की है। जैविक विधियों से अच्छी गुणवत्ता वाले फल मिल रहे हैं।

श्री गंगाराम साहू, जिला– महासमुंद (छत्तीसगढ़)

स्थान– ग्राम– बागबाहरा, तहसील– बागबाहरा, जिलाः महासमुंद

किस्म– एच.आर.एम.एन.–99 (लो चिलिंग वैरायटी)

किसान की बात–

"मैंने 2020 में हिमाचल से एच.आर.एम.एन.–99 किस्म के 50 पौधे मंगवाए थे। पहले तो मुझे शक था कि यहां सेब उगेगा भी या नहीं, लेकिन पौधे अच्छे से बढ़े और तीसरे साल में फल आना शुरू हो गया। पौधे 4–5 फीट के हैं और फल का रंग लाल और स्वाद मीठा है। गर्मी में ड्रिप सिंचाई और जैविक खाद से काफी मदद मिली।"

जलवायु

गर्मी अधिक, लेकिन सर्दियों में थोड़ी ठंड (10°C तक) हो जाती है, जो इस वैरायटी के लिए पर्याप्त है।

खेती का तरीका–

- पौधों के बीच दूरी– 10×10 फीट
- सिंचाई– ड्रिप सिस्टम
- खाद– गोबर खाद, वर्मी कम्पोस्ट, नीम खली।
- कीट नियंत्रण– जैविक तरीके जैसे नीम तेल, ट्राइकोडर्मा

अन्य स्थान जहां सेब की खेती हो रही है–

जिला	स्थान/गांव	किस्म	किसान का नाम
कोरबा	करतला ब्लॉक	Anna, HRMN-99	श्रीमती सुशीला यादव
जशपुर	पत्थलगांव के पास	Dorsett Golden	श्री मनीष भगत
कांकेर	नरहरपुर क्षेत्र	HRMN-99	श्री रामनाथ नेताम

चुनौतियाँ और समाधान

छत्तीसगढ़ में सेब की खेती में कुछ चुनौतियाँ भी हैं, जैसे कीट नियंत्रण, जलवायु परिवर्तन और भंडारण और विपणन की सुविधाओं की कमी। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए राज्य सरकार और कृषि संस्थानों को अनुसंधान और विकास पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, किसानों को सस्ती कृषि सामग्री उपलब्ध करानी चाहिए, और सेब उत्पादों के लिए एक बेहतर आपूर्ति श्रृंखला बनानी चाहिए।

निष्कर्ष

छत्तीसगढ़ में सेब की खेती एक संभावित कृषि व्यवसाय है जो राज्य की कृषि अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दे सकता है। आधुनिक कृषि तकनीकों को अपनाकर और किसानों के लिए एक सहायक पारिस्थितिकी तंत्र बनाकर, सेब की खेती एक स्थिर और लाभकारी विकल्प बन सकती है। इससे न केवल किसानों की आय में वृद्धि होगी, बल्कि राज्य की समग्र आर्थिक वृद्धि में भी योगदान होगा, जिससे कृषि क्षेत्र का दीर्घकालिक सस्टेनेबिलिटी सुनिश्चित हो सकेगी।

***

ISSN: 3049-2211

किसानों के कल्याण हेतु अमरूद उत्पादन के लिए उन्नत और उच्च तकनीके

कपिल देव पूनिया– शोधार्थी (बागवानी विभाग)
डॉ. दीपक कुमार– सहायक आचार्य (सूत्रकृमि विभाग)
हर्षित कुमार– शोधार्थी (बागवानी विभाग)
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपुर।

अमरूद एक महत्वपूर्ण फलदार फसल है, जिसका कृषि, पोषण और आर्थिक दृष्टिकोण से विशेष महत्व है। यह एक महत्वपूर्ण फल है जिसमें विटामिन सी, एंटीऑक्सीडेंट, फाइबर और पोटेशियम जैसे पोषक तत्व भरपूर मात्रा में पाए जाते है।

जलवायु एवं भूमि

अमरूद उष्ण तथा उपोष्णीय क्षेत्र का फल है। यह विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है। अमरूद की खेती अम्लीय एवं क्षारीय भूमि में भी की जा सकती हैं परन्तु अधिक पी.एच.मान (7.5 से अधिक) वाली मिट्टी में उक्ठा रोग (विल्ट) की समस्या अधिक रहती है। वैसे गहरी उपजाऊ बलुई दोमट मिट्टी अमरूद की खेती के लिये उपयुक्त रहती है।

उन्नत किस्में

इलाहाबाद सफेद: इसका पौधा लम्बा सीधा बढ़ने वाला पत्तिया नुकिली होती है। इसके फल गोल, चमकदार सतह, सफेद गूदे वाले तथा मीठे होते है। उपज प्रति वृक्ष 40 से 50 किग्रा. प्राप्त होती है।

लखनऊ–49 (सरदार): इसके पौधे फैलने वाले व पत्तियाँ चौड़ी होती है। इसके फल बड़े. खुरदरी सतह वाले, सफेद गूदे अच्छी किस्म के होते है। इसकी गंध व स्वाद उत्तम पाया गया है। इस किस्म के पौधों से 50 से 60 किग्रा. फल प्रति वृक्ष प्राप्त होते हैं।

श्वेता: यह किस्म भी केन्द्रिय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा एपल ग्वावा किस्में से चयन विधि द्वारा विकसित की गई है। इसके फल बड़े श्वेत आभायुक्त पीले होते है तथा कभी कभी फलों पर लालीया भी उभर आती है। फल कम बीज वाले मुलायम तथा श्वेत गूदा युक्त होते है। फल का वजन 200 से 225 ग्राम तक होता है तथा प्रति पौधा 70 से 90 किग्रा उपज प्राप्त होती है। फल स्वाद में अच्छे, मिठे तथा अधिक मात्रा में विटामीन सी युक्त होते है।

ललित: यह किस्म केन्द्रिय उपोश्ण बागवानी संस्थान लखनऊ द्वारा अमरूद की एथल ग्वावा किस्म से चयन विधि द्वारा तैयार की गई है। इसके फल मध्यम आकार एवं केसरयुक्त पीले रंग के तथा गुलाबी गूदा वाले होते है इसके फलों का वजन 185 से 200 ग्राम तक होता है तथा इसके फल खाने व फल प्रसंस्करण (जैली, पेय पदार्थ) दोनों के लिए उपयुक्त है।

इसके अतिरिक्त अर्का मृदुला, अर्को अमूल्या अर्का किरण, नवीन किस्में है जो राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर एवं आर. सी.जी. एच.–1 किस्म केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ से प्राप्त कर सकते है।

प्रवर्धन

अमरूद का प्रवर्धन बीज एवं वानस्पतिक तरीके से किया जाता है। प्रवर्धन का उपयुक्त समय जुलाई–अगस्त है। अमरूद का प्रवर्धन बीज एवं वानस्पतिक तरीके से किया जाता है।

इलाहाबादी सफेदा

लेयरिंग (गूटी बांधना): यह सबसे सरल तथा उत्तम विधि है जिसमें 60–70 प्रतिशत सफलता मिलती है इसमें एक वर्ष पुरानी शाखाओं के आधार से लगभग 10–15 सेमी. ऊपर से 2–3 सेमी. छाल निकाल ली जाती है। इस तरह बनी रिंग के ऊपरी हिस्से पर 2500 पी.पी.एम. इण्डोल ब्यूटारिक एसिड की लेई लगाकर गीली मांस घास को पोलीथीन की पट्टी से कसकर बांध देते है। उपचारित शाखाओं से 20–25 दिनों में जड़े निकल आती है। कुछ दिनों बाद इन शाखाओं को काट कर पौधशाला में रोपित कर देते है। वायुदाब गूटी के लिए सबसे उपयुक्त समय जून से अगस्त माह होते है।

खाद और उर्वरक

वृक्ष की आयु (वर्ष)	मात्रा किलोग्राम प्रति पौधा			
	गोबर की खाद	यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1–3	10–20	0.05–0.25	0.15–1.50	0.20–0.40
4–6	25–40	0.30–0.60	0.50–2.00	0.40–0.80
7–10	40–50	0.75–1.00	2.00	0.80–1.20
10 से अधिक	50	1.00	2.50	1.20

सिंचाई एवं अन्तराशस्यन

गर्मियों में प्रायः 7 से 10 दिन एवं सर्दियों में 15 से 20 दिन के अंतर से सिंचाई करनी चाहिए। वर्षा ऋतु की फसल लेने के लिये सिंचाई फरवरी मार्च में शुरू करनी चाहिये तथा शरद ऋतु की फसल के लिये सिंचाई जून माह में प्रारम्भ कर देनी चाहिये। फल विकास के समय उचित नमी होना आवश्यक होता है। अ.भा.स. फ.अ.प.के., उदयपुर की अनुसंधान संस्तुतिनुसार अमरूद की फसल में 75 प्रतिशत सकल वाष्पीकरण दर से एक दिन के अंतराल पर सिंचाई के साथ 45:20:20 ग्राम एन.पी.के. प्रति पौधा प्रतिवर्श (6 वर्ष के बाद के वर्षों गुणन की स्थिर मात्रा में) जल में घुलनशील उर्वरकों को 5 बार समान रूप से विभक्त मात्रा में (फल ठहराव से परिपक्वता तक 15 दिनों के अंतराल पर) देने की संस्तुति की गई है। आरम्भके तीन वर्षों तक आय का साधन बना रहे इसके लिए मटर, ग्वार, चौला, मिर्च, बैंगन आदि फसलों की खेती की जा सकती है।

कृन्तन (प्रूनिंग): अमरूद में फूल तथा फल, नई वृद्धि शाखाओं पर ही लगते है अतः फल तुड़ाई के पश्चात् कृन्तन नियमित प्रति वर्ष

अपनाना चाहिये। जिससे नयी वृद्धि अधिक मात्रा में हो। वहीं अति सघन बागवानी में वर्ष में दो बाद सघन कांट छांट (प्रूनिंग) यथा पहली फरवरी–अप्रेल तथा दूसरी सितम्बर–अक्टूबर माह में करने की संस्तुति दी गई है।

बहार नियंत्रण

अमरूद के पौधे पर वर्ष में तीन बार फूल आते हैं। मृग बहार से मिलने वाले फलों की गुणवत्ता अच्छी होती है। इस समय बरसात होने से सिंचाई की कम आवश्यकता होती है। शेष ऋतुओं की बहार को नष्ट कर देना चाहिये। फलतः रोकने के लिये फूलों को हाथ से तोड़ देना चाहिये अथवा फूल आने से 1.5–2 माह पहले पानी नहीं देना चाहिये एवं बाग की गुड़ाई कर देनी चाहिये।

कीट प्रबन्धन

1. फल मक्खी: यह मक्खी बरसात के फलों को विशेष हानि पहुंचाती है। यह फलों के अन्दर अण्डे देती है। जिससे बाद में लटे (मैगट्स) पैदा होकर फल के अन्दर के गूदे को खाने लग जाती है। प्रभावित फल भी अन्त में नीचे गिर जाते है। फल मक्खी नियन्त्रण हेतु अ.भा.स.फ.अ.प.के. उदयपुर की संस्तुतियां निम्न प्रकार है–

1. शीरा या शक्कर 100 ग्राम के एक लीटर पानी के घोल में 10 मिली. मैलाथियोंन 50 ई.सी. मिलाकर प्रलोभक तैयार कर 50 से 100 मिली. प्रति मिट्टी के प्याले की दर से प्याले में डालकर जगह–जगह पेड़ों पर टांग देवें।
2. क्यूनालफॉस 25 ई.सी. का 2 मिली. प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करें अथवा मिथाइल डिमेटॉन का छिड़काव मार्च, अप्रैल, मई, जून एवं सितम्बर अक्टूबर में करें।
3. फल मक्खी ट्रेप 15–20 प्रति हैक्टर लगाना लाभप्रद रहता है इसके अन्दर "मिथाईल युजिनोल" या "स्लो रिलीज फिरोमोन फोर्मुलेशन" का उपयोग कर प्रलोमक ट्रेप के अन्दर रख कर नर मक्खी आकर्षित कर नियंत्रण करें।

2. छाल भक्षक कीट: यह कीट अमरूद के वृक्ष की छाल को खाता है तथा छिपने के लिये अन्दर डाली में गहराई तक सुरंग बना डालता है जिससे कभी–कभी डाल/शाखा कमजोर पड़ जाती है।

नियन्त्रणः क्यूनालफॉस 25 ई.सी. 2 मिली. प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर शाखाओं/डालियों पर छिड़कें तथा साथ ही सुरंग को साफ करके किसी पिचकारी की सहायता से केरोसिन 3 से 5 मिली प्रति सुरंग में डालें या रूई का फाहा बनाकर अन्दर रख देवें एवं गीली मिट्टी से बंद कर देवें।

व्याधि प्रबन्धन

म्लानि रोग (मुरझान, उकठा, सूखा या विल्ट):

रोग के लक्षण दो प्रकार के होते है। पहला आंशिक मुरझान, जिसमें पेड़ की एक या अधिक मुख्य शाखाएं रोग ग्रस्त होती है और अन्य शाखाएं स्वस्थ रहती है। ऐसे पेड़ों की पत्तियां पीली पड़कर झड़ने लगती हैं। रोग ग्रस्त शाखाओं पर कच्चे फल छोटे भूरे व सख्त हो जाते है। दूसरी अवस्था में रोग का प्रकोप पूरे पेड़ पर होता है और वह शीघ्र सूख जाता है। रोग अगस्त से अक्टूबर माह में उग्र रूप धारण कर लेता है।

1. बाविस्टीन दो ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल कर 20 से 30 लीटर घोल प्रति वृक्ष या आवश्यकतानुसार भूमि का मंजन (ड्रेन्च) करने से लाभ होता है
2. प्रतिरोधी मूलवृन्त चाइनीज अमरूद (सीडियम फेडरीस्थेलिनम) का उपयोग करने पर 2 से 2.5 गुणा उपज बढ़ सकती है। इसे राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलौर से प्राप्त कर सकते है।
3. उखटा बिमारी के रोकथाम के लिए अ.भा.स.फ.अ.प.के. उदयपुर द्वारा अनुसंधान संस्तुति है कि जैव उपचार हेतु ट्राइकोडर्मा विरिडि 250 ग्राम प्रति वृक्ष या एस्पर्जिलस नाइजर 5 ग्राम प्रति किग्रा गोबर की खाद में उपचारित कर इसे 5 किग्रा प्रति पौधा रोपण के समय तथा 10 किग्रा प्रति पौधा प्रति वर्ष दें। साथ ही गोबर की खाद 40 किग्रा के साथ नमी की खली 2 किग्रा तथा जिप्सम 2 किग्रा प्रति वृक्ष देना चाहिए।

➢ श्याम वर्ण (एन्थेक्नोज) रोग का प्रकोप वर्षा ऋतु में अधिक होता है। ग्रसित फलों पर काली चित्तीयां पड़ जाती है और उनकी वृद्धि रूक जाती है। ऐसे फल पेड़ों पर लगे रहते हैं और सड़ जाते है। रोगी कोमल शाखायें नीचे की तरफ सूखने लगती हैं। ऐसी शाखाओं की पत्तियां झड़ने लगती हैं और उसका रंग भूरा हो जाता है। नियन्त्रण हेतु सूखी टहनियों को काट देना चाहिये और उसके पश्चात् कार्बेन्डाजिम दवा का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर फल आने तक 10–15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करना चाहिये।

जड़–गाँठ सूत्रकृमि: युवा पौधों में पीलापन, मुरझाना, शाखाओं का सूखना, कम शक्ति और कम उत्पादकता दिखना ।

एकीकृत निमेटोड प्रबंधन:

1. पौधे लगाने के लिए निमेटोड मुक्त ग्राफ्ट और लेयर का उपयोग करें, यदि कोई हो तो गाँठ की जाँच करें ।
2. पीलापन, कांस्यीकरण और बौनापन जैसे लक्षण दिखाई देने पर कार्बोफ्यूरान 3G/60 ग्राम / पौधे का उपयोग करें ।
3. 1 किलो बायोएजेंट *पर्पुरियोसिलियम लिलासिनम* (*पेसिलोमाइसेस लिलासिनस*) को 100 किलो एफ.वाई.एम. में मिलाया जा सकता है, अच्छी तरह से मिलाया जा सकता है, नमीयुक्त किया जा सकता है और 2–3 सप्ताह के लिए छाया में रखा जा सकता है और हर 3 महीने में 500 ग्राम–1 किलो प्रति पौधे पर उपयोग करें।

जस्ते की कमी: जिंक सल्फेट 6 ग्राम व बुझा हुआ चूना 4 ग्राम को एक लीटर पानी में घोल कर अप्रैल व जून माह में छिड़काव करने से अच्छा लाभ होता है। अमरूद में फल फटने की रोकथाम के लिए पुष्पन से पूर्व अप्रेल माह में तथा जून माह में बोरोन (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करने की संस्तुति दी गई है।

तुड़ाई एवं उपज

फलों का रंग जब हरे से पीले में बदलने लगे तब उन्हें सावधानी पूर्वक तोड़ लेना चाहिये। एक पूर्ण विकसित पेड़ से लगभग 40 से 50 किलोग्राम फल प्राप्त हो जाते है।

***

ISSN: 3049-2211

कृषि उद्यमियों के लिए टिश्यू कल्चर लैब: नया व्यवसायिक अवसर

उज्ज्वल कुमार एवं डॉ० धर्मेन्द्र खोखर
पादप कार्यकी, कृषि जैव रसायन, औषधीय एवं सुगंधित पौधे विभाग,
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़।

परिचय

आधुनिक कृषि में टिश्यू कल्चर (ऊतक संवर्धन) एक अत्यंत प्रभावशाली और क्रांतिकारी तकनीक के रूप में उभरी है, जो किसानों और उद्यमियों के लिए नए अवसरों के द्वार खोल रही है। इस विधि में पौधों के किसी भी हिस्से जैसे जड़, तना, पत्ती या पुष्प के ऊतकों को प्रयोगशाला में निर्जीव (स्टरलाइज्ड) परिस्थितियों में विशेष पोषक माध्यम पर विकसित किया जाता है, जिससे बड़ी संख्या में स्वस्थ, रोगमुक्त और उच्च गुणवत्ता वाले पौधे तैयार किए जा सकते हैं। टिश्यू कल्चर तकनीक कोशिकीय पूर्णशक्तता (Totipotency) के सिद्धांत पर आधारित है। इस सिद्धांत के अनुसार, पौधे की प्रत्येक जीवित कोशिका में एक पूर्ण पौधे को विकसित करने की क्षमता होती है। इस सिद्धांत की संकल्पना सर्वप्रथम 1902 में जर्मन वनस्पति वैज्ञानिक हैबरलांट ने दी थी, इसीलिए उन्हें टिश्यू कल्चर का जनक कहा जाता है। इस प्रक्रिया में संवर्धन माध्यम (Culture Medium) या संवृद्धि घोल (Growth Medium) का विशेष महत्व होता है। यह माध्यम सामान्यतः जेली के रूप में होता है, जिसमें आवश्यक पोषक तत्व जैसे कार्बोहाइड्रेट्स, विटामिन्स, हार्मोन्स और खनिज शामिल होते हैं, जो पौधों के ऊतकों की वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक होते हैं। टिश्यू कल्चर की सहायता से दुर्लभ, लुप्तप्राय या उच्च मूल्य वाली किस्मों को तेज़ी से और समान गुणों के साथ बड़ी संख्या में विकसित किया जा सकता है, जिससे यह तकनीक कृषि, बागवानी और वानिकी के क्षेत्र में अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो रही है।

टिशू कल्चर की प्रक्रिया

टिशू कल्चर (ऊतक संवर्धन) एक प्रयोगशाला तकनीक है जिसके द्वारा पौधों के छोटे ऊतक खंडों से नए पौधे उत्पन्न किए जाते हैं। यह प्रक्रिया निम्नलिखित चरणों में पूरी होती है–

1. ऊतक का संग्रह (एक्सप्लांट लेना)

पौधे के बढ़ते हुए भाग (जैसे तना, पत्ती या जड़ का शीर्ष) से एक छोटा ऊतक खंड (एक्सप्लांट) लिया जाता है। इस ऊतक को स्टरलाइज़ (रोगाणुमुक्त) करके एक विशेष पोषक माध्यम (जेली) में रखा जाता है, जिसमें पौधे के विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्व (कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, अमीनो अम्ल) और वृद्धि हार्मोन (ऑक्सिन, साइटोकाइनिन) होते हैं।

2. कैलस निर्माण

पोषक माध्यम में मौजूद हार्मोन ऊतक की कोशिकाओं को तेजी से विभाजित करने के लिए प्रेरित करते हैं, जिससे एक असंगठित कोशिका समूह बनता है, जिसे कैलस (ब्ससने) कहते हैं। कैलस में भ्रूणीय कोशिकाएँ होती हैं, जिन्हें अलग–अलग हार्मोन देकर पौधे के विभिन्न भागों में विकसित किया जा सकता है।

3. अंग विभेदन (डिफरेंसिएशन)

कैलस को जड़ विकसित करने वाले माध्यम में स्थानांतरित किया जाता है, जिसमें ऑक्सिन हार्मोन की अधिक मात्रा होती है। इससे जड़ें बनती हैं। फिर इसे तना विकसित करने वाले माध्यम में डाला जाता है, जिसमें साइटोकाइनिन हार्मोन प्रमुख होता है। इससे पौधे का तना विकसित होता है।

4. प्लांटलेट का निर्माण

जड़ और तना विकसित होने के बाद कैलस एक छोटे पौधे (प्लांटलेट) का रूप ले लेता है। एक ही कैलस से कई प्लांटलेट्स बनाए जा सकते हैं, जिससे एक ही पौधे के हजारों क्लोन तैयार होते हैं।

5. हार्डनिंग और मिट्टी में रोपण

प्लांटलेट्स को प्रयोगशाला से बाहरी वातावरण के अनुकूल बनाने (हार्डनिंग) के लिए कुछ समय ग्रीनहाउस में रखा जाता है। फिर इन्हें मिट्टी या गमलों में लगाकर पूर्ण विकसित पौधे तैयार किए जाते हैं।

किसानों के लिए टिशू कल्चर के आर्थिक लाभ

टिशू कल्चर तकनीक किसानों को उच्च उत्पादकता, कम लागत और बेहतर बाजार मूल्य प्रदान करके आर्थिक रूप से मजबूत बनाती है। आइए जानते हैं कि यह तकनीक किसानों की आय कैसे बढ़ा सकती है–

1. उच्च गुणवत्ता वाले पौधे → अधिक मुनाफा

- रोगमुक्त एवं उन्नत किस्में (केला, आलू, गन्ना) बाजार में अधिक कीमत पर बिकती हैं। एकसमान वृद्धि व जल्दी पकने से प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ता है।
- निर्यात के अवसररू फूल (गुलाब, जरबेरा), फल (स्ट्रॅाबेरी, केला) और औषधीय पौधों (एलोवेरा, तुलसी) की अंतर्राष्ट्रीय मांग।

2. लागत कम, उत्पादन अधिक

- कीटनाशकों पर खर्च कम (रोगरोधी पौधे)।
- 95% तक पौधों का जीवित रहना (पारंपरिक बीजों में केवल 60–70%)।
- कम पानी वाली फसलें (सूखा सहनशील किस्में) सिंचाई लागत घटाती हैं।

3. बीज रहित पौधों का प्रसार

केला, अनानास, अंगूर जैसे बीज रहित पौधों का केवल टिशू कल्चर द्वारा ही व्यावसायिक स्तर पर प्रसार संभव है।

4. तीव्र गति से पौध उत्पादन

इस तकनीक से कुछ हफ्तों या महीनों में ही हजारों पौधे (प्लांटलेट्स) तैयार किए जा सकते हैं, जबकि पारंपरिक तरीकों में वर्षों लग सकते हैं। यह विधि फसल उत्पादन की गति को बढ़ाकर कृषि उत्पादकता में क्रांति ला सकती है।

5. सालभर खेती → ऑफ–सीजन में भी आमदनी

- पॉलीहाउस/ग्रीनहाउस में सालभर खेती संभव।
- मौसम से पहले या बाद में सब्जियां/फल (टमाटर, शिमला मिर्च) उगाकर अधिक मूल्य प्राप्त करना।

5. सरकारी सब्सिडी व योजनाओं का लाभ

- APEDA, NHB (राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड) और राज्य सरकारें टिशू कल्चर पौधों पर अनुदान देती हैं।

ISSN: 3049-2211

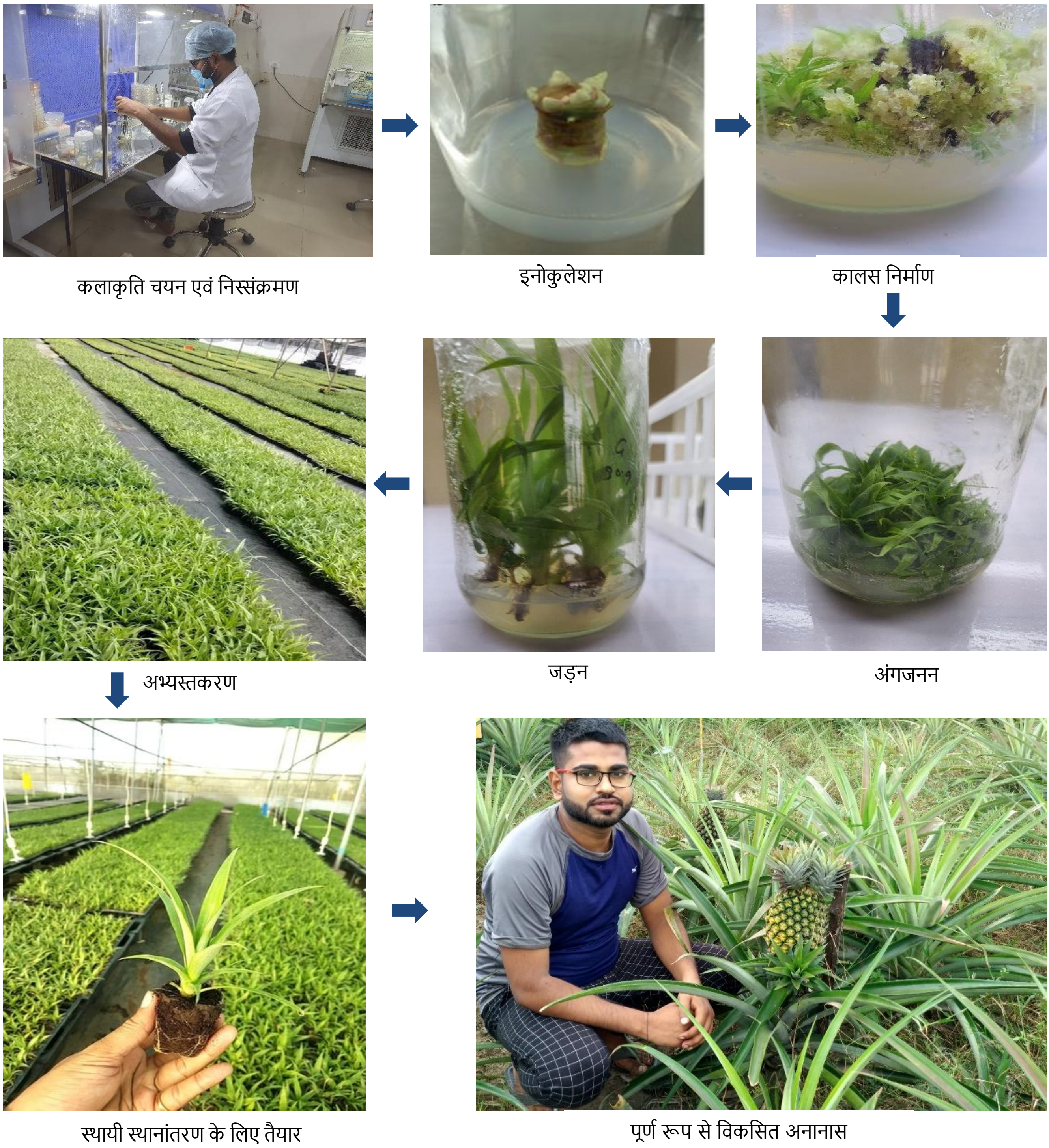

टिशू कल्चर की विभिन्न प्रक्रियाएं

- सूक्ष्म सिंचाई (Micro-Irrigation) व पॉलीहाउस पर सब्सिडी।
- प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (च्ड्झैल) से जल बचत।

6. हाई–वैल्यू फसलों में विविधीकरण

- पारंपरिक फसलों के बजाय वैनिला, मशरूम, औषधीय पौधे जैसी लाभदायक फसलें।
- हर्बल उत्पादों (गिलोय, अश्वगंधा) की बढ़ती मांग।

7. कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग व बाजार सुरक्षा

- कंपनियाँ (महिंद्रा एग्री, नमधारी सीड्स) बाय–बैक एग्रीमेंट देती हैं।
- फार्मा कंपनियाँ सीधे किसानों से जड़ी–बूटियाँ खरीदती हैं।

8. रोजगार व ग्रामीण उद्यमिता

- सहकारिता समूह (FPOs) छोटे टिशू कल्चर यूनिट लगा सकते हैं।
- महिलाएं व युवा नर्सरी प्रबंधन में काम कर सकते हैं।

वाणिज्यिक प्लांट टिशू कल्चर लैब कैसे शुरू करें?

भारत में टिशू कल्चर लैब (ऊतक संवर्धन प्रयोगशाला) शुरू करना एक लाभदायक व्यवसायिक अवसर हो सकता है,

खासकर कृषि, बागवानी और बायोटेक सेक्टर में। यहां पूरी प्रक्रिया चरणबद्ध तरीके से समझाई गई है–

1. बिज़नेस प्लान तैयार करें

- लक्ष्य निर्धारित करें– किस प्रकार के पौधे (फल, सब्जियां, फूल, औषधीय पौधे) उगाने हैं?
- बाजार शोध– स्थानीय और निर्यात बाजार की मांग का विश्लेषण करें।
- वित्तीय योजना– लैब स्थापना, संचालन और मार्केटिंग का बजट बनाएं।

2. लैब स्थापना के लिए आवश्यक चीजें

(क) स्थान का चयन

- 1000–2000 वर्ग फुट का स्थान (शहर के बाहर या औद्योगिक क्षेत्र में)।
- बिजली, पानी और वेंटिलेशन की उचित व्यवस्था।

(ख) आवश्यक उपकरण

उपकरण	उद्देश्य
लैमिनर एयर फ्लो	बैक्टीरिया/फंगस से मुक्त वातावरण
ऑटोक्लेव	उपकरणों की नसबंदी
इनक्यूबेटर	पौधों के विकास के लिए नियंत्रित वातावरण
स्टीरियो माइक्रोस्कोप	ऊतकों की जांच
पीएच मीटर	माध्यम (मीडिया) का पीएच चेक करने के लिए
ग्रोथ चैंबर	पौधों की वृद्धि के लिए

(ग) रसायन और माध्यम (मीडिया)

- डे मीडिया (Murashige & Skoog Medium)– पौधों की वृद्धि के लिए आधार।
- हार्मोन्स (ऑक्सिन, साइटोकाइनिन) जड़ और तने के विकास के लिए।
- एगर–एगर– जेली बनाने के लिए।

3. लाइसेंस और रजिस्ट्रेशन

- कंपनी रजिस्ट्रेशन– प्राइवेट लिमिटेड, LLP या सोल प्रोप्राइटरशिप के तहत।
- बायोटेक विभाग से अनुमति– DBT (Department of Biotechnology) के दिशानिर्देशों का पालन करें।
- प्लांट क्वारंटाइन अनुमति– ICAR (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद) से।
- GST रजिस्ट्रेशन– कर अनुपालन के लिए।

4. कर्मचारी और प्रशिक्षण

- कुशल टेक्निशियन– बायोटेक या बॉटनी में डिप्लोमा/डिग्री धारक।
- लैब असिस्टेंट्स– मीडिया तैयार करने और संस्कृति प्रबंधन में सहायता।
- प्रशिक्षण– ज्ञटज्ञ (कृषि विज्ञान केंद्र) या निजी संस्थानों से लें।

6. मार्केटिंग और बिक्री

- ग्राहक आधार– नर्सरी, किसान, बीज कंपनियां, निर्यातक।
- ऑनलाइन प्लेटफॉर्म– अपनी वेबसाइट, Amazon, AgriMart पर उत्पाद बेचें।
- सरकारी टेंडर– राज्य कृषि विभाग और छभ्ठ (राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड) से जुड़ें।

7. निवेश और लाभः खर्च का प्रकार एवं अनुमानित लागत (₹)

लैब स्थापना– 10–25 लाख
उपकरण– 5–15 लाख
कच्चा माल– 2–5 लाख/माह
मार्केटिंग– 1–3 लाख/वर्ष
कुल निवेश– 20–50 लाख

संभावित आय–

- प्रति पौधा कीमतरू ₹10–₹100 (फसल के प्रकार पर निर्भर)।
- प्रति माह 50,000–2,00,000 पौधे बेचकर ₹5 लाख से ₹20 लाख/माह कमाई।

8. सरकारी सहायता और सब्सिडी

- DBT (Department of Biotechnology)– बायोटेक स्टार्टअप्स को अनुदान।
- NHB (National Horticulture Board)– टिशू कल्चर यूनिट्स को वित्तीय सहायता।
- स्टार्टअप इंडिया– टैक्स छूट और फंडिंग।

निष्कर्ष

टिशू कल्चर लैब भारत में एक अत्यंत लाभदायक और भविष्योन्मुखी व्यवसायिक अवसर प्रस्तुत करता है, जो 20–50 लाख रुपये के प्रारंभिक निवेश के साथ शुरू किया जा सकता है और जिससे मासिक 5–20 लाख रुपये तक की आय प्राप्त की जा सकती है। यह तकनीक किसानों को उच्च गुणवत्ता वाले, रोगमुक्त एवं अधिक उपज देने वाले पौधे उपलब्ध कराकर कृषि क्षेत्र में क्रांति ला रही है, साथ ही क्ठज, छभ्ठ और स्टार्टअप इंडिया जैसी सरकारी योजनाओं से वित्तीय सहायता प्राप्त की जा सकती है। वैश्विक बाजार में बढ़ती मांग, विशेषकर नीदरलैंड, अमेरिका और जापान जैसे देशों में निर्यात की संभावनाओं के साथ–साथ यह व्यवसाय रोजगार सृजन का भी एक बड़ा स्रोत बन सकता है, बशर्ते तकनीकी ज्ञान, गुणवत्ता नियंत्रण और प्रभावी मार्केटिंग रणनीति पर ध्यान दिया जाए। जैविक खेती, औषधीय पौधों और स्मार्ट फार्मिंग तकनीकों की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए इस क्षेत्र में और भी अधिक विकास की संभावना है।

***

ISSN: 3049-2211

जल संरक्षण व सिंचाई तकनीकें

कीर्ति वर्धन पाण्डेय– शोध छात्र, कृषि मौसम विज्ञान विभाग
डॉ अजय त्रिपाठी– सहायक प्राध्यापक, जैव रसायन विभाग
आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

यह लेख कृषि में स्थायी जल प्रबंधन पर केंद्रित है, विशेष रूप से सिंचाई विधियों और जल संरक्षण उपायों के संदर्भ में। बढ़ती जनसंख्या और पानी की कमी के कारण, कम पानी में अधिक उत्पादन के लिए ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकलर सिस्टम और सटीक खेती जैसी आधुनिक विधियों की आवश्यकता है। लेख में इन विधियों के लाभ और सीमाओं के साथ–साथ ऊर्जा आवश्यकताओं, जल वितरण की एकरूपता और स्वचालन व रिमोट सेंसिंग जैसी तकनीकों के उपयोग की संभावना पर चर्चा की गई है, ताकि कृषि में जल का कुशल और टिकाऊ उपयोग सुनिश्चित किया जा सके।

परिचय

जल जीवन और अनेक आर्थिक गतिविधियों की सुविधा के लिए आवश्यक एक महत्वपूर्ण संसाधन है, कृषि वैश्विक स्तर पर जल का उपयोग करने वाले प्राथमिक क्षेत्रों में से एक है। जैसे–जैसे वैश्विक जनसंख्या बढ़ रही है और जलवायु परिवर्तन के प्रभाव अधिक स्पष्ट होते जा रहे हैं, कृषि में स्थायी जल प्रबंधन की आवश्यकता एक महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप में उभरी है। इस स्थिति में जल की कमी और पर्यावरणीय गिरावट से उत्पन्न चुनौतियों से निपटने के लिए कुशल सिंचाई विधियों और जल संरक्षण रणनीतियों के कार्यान्वयन की आवश्यकता है।

कृषि में जल प्रबंधन का महत्व

कृषि में जल प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि फसल उत्पादन, पशुपालन और जलीय कृषि पानी पर निर्भर हैं। अपर्याप्त या अकुशल जल उपयोग से फसल की पैदावार घट सकती है और खाद्य सुरक्षा प्रभावित हो सकती है। जलवायु परिवर्तन, सूखा और जल संसाधनों का अत्यधिक दोहन पानी की उपलब्धता को चुनौती देते हैं, जिससे कृषि क्षेत्र को पानी की कमी का सामना करना पड़ सकता है। साथ ही, अत्यधिक जल निष्कर्षण और अकुशल सिंचाई पर्यावरणीय असंतुलन, जलभराव, मिट्टी कटाव और जल प्रदूषण का कारण बन सकते हैं। इसलिए, टिकाऊ जल प्रबंधन कृषि और पर्यावरण दोनों के लिए आवश्यक है।

कृषि जल प्रबंधन में आने वाली चुनौतियाँ

पारंपरिक कृषि में निरंतर निष्कर्षण और फसल कटाई से मिट्टी व जल की गुणवत्ता घटती है। बेहतर उपज के लिए कृषि जल प्रबंधन जरूरी है, जिससे जल का तर्कसंगत उपयोग और फसल को शुष्क मौसम में पर्याप्त पानी मिल सकता है। इससे कृषि का आधुनिकीकरण संभव है, परंतु कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ हैंकृ जैसे किसानों की पारंपरिक सोच, खराब जल अवसंरचना, जल अधिकारों की अस्पष्टता और पर्यावरणीय समर्थन की कमी। जल–बचत सिंचाई की आवश्यकता को किसान अभी भी नहीं अपना पा रहे हैं और अधिक पानी उपयोग को ही लाभकारी मानते हैं, जिससे समस्याएँ बनी रहती हैं।

संरक्षण प्रौद्योगिकियाँ

संरक्षण की प्रक्रिया नुकसान या बर्बादी के विरुद्ध संरक्षण का पर्याय हो सकती है। संक्षेप में कहें तो इसका मतलब है देश के जल संसाधनों को हमारे पास उपलब्ध सभी तकनीकों के साथ सर्वोत्तम लाभकारी उपयोग के लिए रखना। जल संरक्षण का मूल उद्देश्य मांग और आपूर्ति का मिलान करना है। जल संरक्षण की रणनीतियाँ मांग उन्मुख या आपूर्ति उन्मुख और प्रबंधन उन्मुख हो सकती हैं।

जल उपयोग, घरेलू, सिंचाई या औद्योगिक उपयोग के क्षेत्र के आधार पर रणनीतियाँ अलग–अलग हो सकती हैं।

1) वर्षा जल संचयन– वर्षा जल संचयन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें छतों, बांधों, तालाबों आदि से वर्षा जल एकत्र किया जाता है। यह जल घरेलू उपयोग, सिंचाई और पशुओं को पानी पिलाने के लिए उपयोगी है। छतों का पानी एकत्र कर पुनः उपयोग करने से मच्छरों व बीमारियों का खतरा कम होता है और भूमिगत जल स्तर सुधरता है। बांधों में वाष्पीकरण से जल हानि को मिट्टी से ढककर घटाया जा सकता है। यह विधि कम लागत, आसान संचालन और उच्च दक्षता के कारण लोकप्रिय है।

2) बेहतर सिंचाई पद्धतियाँ– कृषि क्षेत्र में जल संरक्षण अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि पौधों के विकास के लिए जल अनिवार्य है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से जल स्तर घट रहा है और मिट्टी की लवणता बढ़ रही है। इस समस्या से निपटने के लिए जल संचयन, पुनर्भरण और सिंचाई की आधुनिक तकनीकों को अपनाया जा रहा है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में पारंपरिक जल संरक्षण विधियाँ उपयोगी हैं। सिंचाई में ड्रिप विधि सबसे प्रभावी है, क्योंकि यह सीधे जड़ों तक जल पहुँचाती है और बर्बादी कम करती है।

3) सीढ़ीनुमा खेती और कंटूर खेती– टेरेसिंग और कंटूर फार्मिंग, खड़ी ढलानों पर समतल क्षेत्र बनाकर मिट्टी और जल संरक्षण की पारंपरिक, प्रभावी विधियाँ हैं। इसमें समोच्च रेखाओं के साथ सतह बनाकर वर्षा जल को रोकते हैं, जिससे मिट्टी का कटाव और अपवाह कम होता है। इससे खेतों में नमी बनी रहती है, सूखे में भी फसल को पानी मिलता है और सिंचाई की आवश्यकता घटती है। ऊपरी सतह जल संचित करती है, निचली सतह जल निकासी में सहायक होती है। यह श्रमसाध्य, परंतु टिकाऊ कृषि के लिए लाभकारी विधि है।

ISSN: 3049-2211

4) परिशुद्ध कृषि तकनीक– परिशुद्ध कृषि में फसल आवश्यकताओं और क्षेत्रीय परिवर्तनशीलता के अनुसार खेत प्रबंधन किया जाता है, जिसमें रिमोट सेंसिंग, जीपीएस और विश्लेषण सॉफ्टवेयर का उपयोग होता है। पारंपरिक विधियाँ सिंचाई को तुरंत समायोजित नहीं कर पातीं, इसलिए त्वरित नमी प्रबंधन हेतु स्वचालित सिंचाई और नियंत्रण उपकरण जोड़े गए हैं। विद्युत चुम्बकीय सेंसर से मिट्टी की चालकता मापकर उत्पादकता जोन मानचित्र बनते हैं, जिससे सटीक फसल प्रबंधन संभव होता है।

5) स्मार्ट सिंचाई प्रौद्योगिकियाँ– स्मार्ट सिंचाई तकनीकें कृषि जल संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, क्योंकि ये पौधों की वास्तविक जल आवश्यकताओं के अनुसार सटीक सिंचाई सुनिश्चित करती हैं। सेंसर–आधारित जल प्रबंधन, कंप्यूटर–नियंत्रित उपकरण और वायरलेस संचार जैसी प्रणालियाँ सिंचाई को अधिक कुशल बनाती हैं। इनके चार मुख्य लाभ हैंकृजल की बचत, लागत में कमी, फसल उत्पादन में वृद्धि, पर्यावरण संरक्षण और श्रम तनाव में कमी। हालांकि, इन तकनीकों को अपनाने में धीमी प्रगति और जागरूकता की कमी जैसी चुनौतियाँ भी मौजूद हैं।

आधुनिक सिंचाई तकनीकें

सिंचाई कृषि का एक महत्वपूर्ण घटक है, जिससे फसलों को उनकी वृद्धि के लिए आवश्यक जल प्राप्त होता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, जहां वर्षा असमान और अनियमित होती है, वहाँ सिंचाई का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। परंपरागत सिंचाई तकनीकों जैसे नहर, कूप, नलकूप एवं टैंक इत्यादि में जल की बहुत अधिक बर्बादी होती है। बढ़ती जनसंख्या, घटते जलस्तर और जलवायु परिवर्तन के कारण अब आधुनिक सिंचाई तकनीकों की आवश्यकता महसूस की जा रही है, जो कम जल में अधिक उत्पादन देने में सक्षम हों।

1) टपक सिंचाई

टपक सिंचाई आधुनिकतम तकनीकों में से एक है। इसमें पाइपों के माध्यम से पानी को पौधों की जड़ों के पास सीधे बूंद–बूंद करके दिया जाता है। यह तकनीक विशेष रूप से उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है जहाँ जल की कमी है। इससे जल की 40% से 60% तक बचत हो सकती है। इसके अतिरिक्त, खाद व उर्वरकों को भी पानी के साथ मिलाकर पौधों तक पहुँचाया जा सकता है, जिससे फसल की गुणवत्ता और उत्पादकता दोनों बढ़ती हैं।

2) फव्वारा सिंचाई

फव्वारा सिंचाई में पानी को पाइपों और स्प्रिंकलर नोजल की सहायता से वर्षा के रूप में खेतों पर छिड़का जाता है। यह तकनीक विशेष रूप से ऐसे क्षेत्रों में उपयोगी है जहाँ मिट्टी हल्की हो और जल अधारभूमि गहरी हो। इससे मिट्टी में समान रूप से नमी बनी रहती है और जल का अपव्यय कम होता है। यह विधि सब्ज़ियों, दलहनों और घास की फसलों के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

3) लेज़र लेवलिंग

इस तकनीक में लेज़र उपकरण की सहायता से खेत की भूमि को समतल किया जाता है। समतल भूमि पर पानी समान रूप से फैलता है जिससे सिंचाई में जल की खपत कम होती है। इससे न केवल जल की बचत होती है, बल्कि फसल की वृद्धि भी बेहतर होती है और खरपतवार नियंत्रण में भी सहायता मिलती है।

4) स्मार्ट/स्वचालित सिंचाई प्रणालियाँ

इनमें सेंसर, टाइमर, और मोबाइल एप्स की सहायता से सिंचाई को स्वचालित किया जाता है। मृदा नमी सेंसर यह तय करते हैं कि कब और कितना पानी देना है। इससे जल की बर्बादी बिलकुल नहीं होती और फसल को आवश्यकतानुसार ही पानी मिलता है।

कृषि जल संरक्षण में चुनौतियाँ और सीमाएँ

21वीं सदी के अंत तक सिंचाई के लिए पानी की मांग बहुत बढ़ेगी। कृषि सबसे अधिक पानी की खपत करती है, लेकिन पानी के उपयोग की दक्षता बढ़ाने के प्रयास कम हैं। बढ़ते तापमान और सूखे के कारण पानी की उपलब्धता घट रही है। उत्पादन दोगुना करने और अक्षय ऊर्जा के लिए बायोमास की मांग से दबाव और बढ़ेगा। संरक्षण विधियाँ छोटे स्तर पर अपनाई गई हैं, लेकिन बड़े पैमाने पर लागू करना जरूरी है।

निष्कर्ष

जल संकट के समाधान हेतु वैज्ञानिकों ने जल–संरक्षण की आधुनिक तकनीकों का विकास किया है, जैसे ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई, जो जल–उपयोग दक्षता बढ़ाती हैं और प्रदूषण घटाती हैं। ये तकनीकें पारंपरिक कृषि की सीमाओं को पार कर, उत्पादन बढ़ाने और पर्यावरण संरक्षण में सहायक हैं। सरकार भी इनका प्रचार–प्रसार कर रही है। जल संसाधनों पर बढ़ते दबाव के मद्देनजर, इन तकनीकों को अपनाना समय की आवश्यकता है। सतत कृषि, खाद्य सुरक्षा और भविष्य की पीढ़ियों के लिए जल का विवेकपूर्ण उपयोग और संरक्षण अत्यंत आवश्यक है।

***

ISSN: 3049-2211

लाख की खेती
ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती देने का सशक्त माध्यम

स्नेहल गुप्ता एवं उज्ज्वल कुमार
पादप कार्यकी, कृषि जैव रसायन, औषधीय एवं सुगंधित पौधे विभाग,
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़।

परिचय

लाख की खेती एक कृषि आधारित बहुमूल्य व्यवसाय है, जिसमें हम लाख उत्पादन के लिए लाख के कीटों को पालते हैं। हम छोटे से लेकर बड़े स्तर पर लाख की खेती स्थापित कर कम से कम लागत में लाखों का मुनाफा प्राप्त कर सकते हैं। लाख की खेती एक ऐसी खेती है, जिसे हम बंजर भूमि या खेतों के किनारे मेजबान पेड़ लगाकर उन पर लाख के कीटों को पाल सकते हैं। यह एक ऐसा व्यवसाय है जो कम से कम लागत में सबसे अधिक लाभ देता है, इस व्यवसाय को हम किसी अन्य व्यवसाय के साथ आसानी से विकसित कर सकते हैं। अगर लाख के उत्पादन की बात करें तो दुनिया में लाख का प्रमुख उत्पादक भारत है क्योंकि दुनिया का 70ः लाख भारत में उत्पादित होता है। लाख के उत्पादन में भारत प्रथम स्थान पर है। देश में सबसे अधिक लाख का उत्पादन झारखंड और छत्तीसगढ़ क्षेत्रों में होता है। लाख मुख्य रूप से मधुमक्खी और रेशम कीट के बाद दूसरा लाभदायक कीट है, जो संपूर्ण मानव जाति को लाभ पहुंचाता है, क्योंकि लाख कीट से प्राप्त लाख मानव जीवन में उपयोग होने वाले विभिन्न पहलुओं में अधिक उपयोगी सामग्री बनाने में मदद करता है और लाख की उपलब्धता को बढ़ाता है। अगर प्राचीन काल की बात करें तो महाभारत के कौरवों और पांडवों के काल में लाख का उपयोग किया जा रहा था, लेकिन अगर आज की बात करें तो हमारा देश बल्कि पूरा विश्व लाख का उपयोग कर रहा है। भारत में विभिन्न प्रकार की जरूरत की वस्तुओं का निर्माण किया जा रहा है। इस मांग को देखते हुए, किसान लाख की खेती में अपनी रुचि दिखा रहे हैं और लाख की खेती की ओर बढ़ रहे हैं, जिससे किसानों को अधिक लाभ हो रहा है। आज के समय में, यदि हम फसल उत्पादन के साथ–साथ अधिक आय प्राप्त करना चाहते हैं, तो हम लाख की खेती से संबंधित व्यवसाय का विकल्प चुन सकते हैं। और हम किसानों को कृषि से संबंधित व्यवसाय के बारे में सलाह देकर उनकी आय को बढ़ा सकते हैं , और साथ ही साथ हम अपने देश की अर्थव्यवस्था को भी बढ़ा सकते हैं।

भारत में लाख उत्पादन की स्थिति

भारत में लाख की खेती मुख्य रूप से आदिवासी और ग्रामीण समुदायों द्वारा की जाती है। हालांकि, उचित प्रसंस्करण सुविधाओं और बाजार तक पहुंच के अभाव में किसानों को इसका पूरा लाभ नहीं मिल पाता। छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र में लाख उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए सरकारी और गैर–सरकारी संस्थाओं ने प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किए हैं, जहां किसानों को वैज्ञानिक तरीकों से लाख पालन का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसी तरह, झारखंड और ओडिशा में भी लाख की खेती को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं चलाई जा रही हैं।

भारत में लाख की खेती के लिए पलाश, कुसुम, बेर और बबूल जैसे पेड़ों को मेजबान के रूप में उपयोग किया जाता है। इन पेड़ों पर लाख के कीट (केरिया लैक्का) पाले जाते हैं, जिनकी दो प्रमुख नस्लें कुसुमी और रंगीनी भारत में लोकप्रिय हैं।

सन् 2013 में छत्तीसगढ़ शासन वन विभाग द्वारा माकड़ी गांव में लाख विस्तार एवं प्रशिक्षण केंद्र का नया भवन लोकार्पित किया गया। अब यहाँ लाख की खेती में रूचि रखने वाले कृषकों के स्वयं सहायता समूह बनवाकर उन्हें वैज्ञानिक पद्यति से प्रशिक्षण एवं अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराइ जाती हैं।

लाख की खेती को अपनाने के कई महत्वपूर्ण कारण हैं, जो इसे विशेष रूप से ग्रामीण और कमजोर वर्ग के किसानों के लिए एक लाभकारी व्यवसाय बनाते हैं–

- **गरीब किसानों के लिए आजीविका का स्रोत–** लाख की खेती किसानों के लिए नियमित आय का स्रोत बन सकती है, खासकर उन किसानों के लिए जिनके पास सीमांत या बंजर भूमि है। यह ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन के साथ–साथ शहरी पलायन को भी कम करता है।
- **सूखे में आय सुनिश्चित–** लाख की खेती सूखे जैसे प्रतिकूल मौसम में भी आय प्रदान करती है, जिससे किसानों की आर्थिक स्थिरता बनी रहती है।
- **अन्य फसलों के साथ कोई प्रतिस्पर्धा नहीं–** लाख की खेती सीमांत भूमि पर की जाती है, जिससे यह अन्य फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं करती। इसे बागवानी और अन्य कृषि फसलों के साथ आसानी से जोड़ा जा सकता है।
- **उच्च आर्थिक मूल्य–** लाख का उपयोग चूड़ियों, सोने के आभूषणों, खिलौनों, स्याही, पॉलिश, सीलिंग मोम, सजावटी वस्तुएं, दर्पण, और विद्युत उद्योग में इन्सुलेटर के रूप में होता है, जिससे इसके उत्पादों की बाजार में उच्च मांग है।
- **वैकल्पिक आय के स्रोत–** लाख की खेती किसानों को नियमित कृषि आय के अलावा एक वैकल्पिक आय प्रदान करती है। लकड़ी के बायोमास का उपयोग ईंधन के रूप में भी किया जा सकता है, जिससे ग्रामीण लोगों को ऊर्जा की कमी नहीं होती।
- महिलाओं के अनुकूल व्यवसाय– लाख की खेती में महिलाओं को रोजगार के अवसर मिलते हैं, जो उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त बना सकता है।
- **पर्यावरण के अनुकूल–** लाख की खेती पर्यावरण के लिए लाभकारी है क्योंकि यह पेड़ों को काटने के बजाय उनका उपयोग करके की जाती है, जिससे जैव विविधता को नुकसान नहीं होता और यह एक पर्यावरण–हितैषी गतिविधि बनी रहती है।
- **न्यूनतम निवेश पर अधिकतम लाभ–** लाख की खेती में निवेश कम होता है, लेकिन इससे अच्छा मुनाफा कमाया जा सकता है, जिससे यह कमजोर वर्ग के लिए एक आदर्श विकल्प बनता है।

लाख के मेजबान पौधे– पलास, बेर, कुसुम, घोंट, जल्लारी, अरहर, पीपल और बबूल लाख कीटों के पालन के लिए मुख्य मेजबान वृक्ष हैं।

ISSN: 3049-2211

लाख की खेती की सामान्य प्रक्रियायें

कुसुम के पेड़ की छंटाई

नई पत्तियों के साथ कुसुम का पेड़

ब्रूड लाख शाखाओं पर स्थापित करना

फसल की कटाई

लाख को खुरचकर अलग करना अलग

क्षारीय घोल (जैसे सोडियम कार्बोनेट) से धुलाई → छानने की प्रक्रिया → शुद्ध लाख को गर्म करके पिघला → पिघले हुए लाख को ठंडा करते समय खींचकर पतली परतों में फैलाना → अंतिम खींचाई के बाद लाख को चादरों या शीट्स के रूप में काटना

कीट पालन की सामान्य प्रक्रियायें

1. वृक्षों की काट–छांट

- **महत्व–** लाख कीट नर्म, मुलायम और रसदार टहनियों पर अच्छा पलता है। इसलिए, बीहन चढ़ाने या कीट छोड़ने से पहले वृक्षों की काट–छांट आवश्यक है।
- **समय–** काट–छांट की प्रक्रिया, कीट छोड़ने के 6 महीने पहले की जानी चाहिए। जैसे, बैसाखी फसल के लिए, जो अक्टूबर या नवम्बर में लगाई जाती है, इसकी काट–छांट अप्रैल में करनी चाहिए।
- **प्रक्रिया–**

✓ 2.5 सेमी व्यास से मोटी टहनियाँ न काटें।

✓ 1.25 सेमी से 2.5 सेमी व्यास की टहनियाँ एक हाथ (1 से 1.5 फीट) की ऊंचाई से काटें।

✓ 1.25 सेमी से कम मोटाई की टहनियों को उनके उत्पत्ति स्थान से काटें।

✓ सूखी, रोगग्रस्त, टूटी या फटी टहनियों को काटें।

✓ तेजधार वाली दावली का उपयोग करें और टहनियाँ तिरछी, साफ और एक बार में काटें।

2. कीट संचारण

- **विधियाँ–**

❖ **पारंपरिक विधि–** 1 से 3 फीट परिपक्व लाख कीट युक्त टहनी नए पेड़ों पर फंसा दी जाती है।

❖ **वैज्ञानिक विधि–** बीहन लाख डंडियों को बंडल बनाकर सुतली से बांधा जाता है।

❖ **शत्रु कीटों से सुरक्षा–** 60 मेश नाइलॉन की जाली में भरकर पेड़ों पर बांधते हैं।

3. फूंकी उतारना

लाख शिशु कीट का निकलना समाप्त होते ही लाख लगी खाली डंडी को फूंकी कहा जाता है।

4. फसल कटाई

परिपक्व फसल का उपयोग बीहन लाख के रूप में करना है, इसलिए फसल कटाई शिशु कीट निकलने के समय ध्यान में रखकर करनी चाहिए। अक्तूबर या नवम्बर में बीहन काटते समय पपड़ी वाली लाख डंडी काटें।

5. दवा छिड़काव

शत्रु कीटों की रोकथाम एवं फफूंदी से बचाव हेतु कीटनाशक/फफंदनाशक छिड़कने की आवश्यकता होती है।

दवा– फिप्रोनिल 5% एस.सी. और कार्बेन्डाजिम का प्रयोग करें।

पहला छिड़काव कीट निर्गमन के 30 दिन बाद और दूसरा 60 दिन पर करें।

6. खंड प्रणाली

- पलास के वृक्षों को तीन खंड में बांटकर खेती की जाती है। पहले खंड से प्राप्त बीहन का उपयोग दूसरे खंड और अरी खंड के वृक्षों को कीट संचारण हेतु किया जाता है।
- ये प्रक्रियाएँ कीट पालन में सफलता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उचित समय पर काट–छांट, कीट संचारण और दवा छिड़काव से लाख उत्पादन में सुधार किया जा सकता है।

निष्कर्ष

भारत में लाख की खेती ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने का एक शानदार अवसर है। सरकारी समर्थन, बेहतर प्रशिक्षण और बाजार तक पहुंच बढ़ाकर इस व्यवसाय को और अधिक लाभदायक बनाया जा सकता है। यह न केवल किसानों की आय बढ़ाएगा, बल्कि देश के आर्थिक विकास में भी योगदान देगा। लाख की खेती को बढ़ावा देकर भारत अपनी प्राकृतिक संपदा का अधिकतम उपयोग कर सकता है और ग्रामीण समुदायों को सशक्त बना सकता है।

***

कृषक मंच
ISSN: 3049-2211

ग्रो बैग मे लिलियम फूलों की उन्नत खेती

शुभम राय, संकेत मौर्या, शान्ता एम. बन्निमट्टी, डॉ. सुनील कुमार
आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या।

फूल अपनी सुंदरता, आकर्षण के कारण विश्व भर में उगाये जाते हैं। इन्हें प्रकृति की सबसे सुंदर और मनोहारी रचनाओं में स्थान प्राप्त है। प्राचीन काल से ही फूलों को कोमलता, और प्रेम के प्रतीक के रूप में देखा जाता रहा है। फूल न केवल सौंदर्य का प्रतीक हैं, बल्कि वे मनुष्य के भावनात्मक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन में भी विशेष स्थान रखते हैं। लिलियम पुरे भारत में बड़े पैमाने पर उगाया जाता है जो किसानों की आय का एक उबरता हुआ श्रोत बन रहा हैं ग्रो बैग में लिलियम को उगाना बढ़ती शहरीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है इसको आसानी से स्थानांतरित किया जा सकता है और कम जगह में रखा जा सकता है।

परिचय

लिलियम एक अत्यंत सुंदर और लोकप्रिय सजावटी कंदयुक्त पुष्प है, जो अपनी मनमोहक सुगंध, रंगों की विविधता, कठोरता तथा विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में आसानी से अनुकूलन क्षमता के कारण बागवानी प्रेमियों और विशेषज्ञों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय है। यह फूल न केवल कट फ्लावर के रूप में, बल्कि गमलों में सजावटी पौधे के रूप में भी उत्कृष्ट प्रदर्शन करता है।

लिलियम का उपयोग पिछले दो हजार वर्षों से विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता रहा है। इसे गुलदस्तों की सजावट, होटलों, घरों और भव्य इमारतों की शोभा बढ़ाने के लिए, साथ ही विवाह, धार्मिक अनुष्ठानों और अंतिम संस्कार जैसे अवसरों पर विशेष रूप से प्रयोग में लाया जाता है। इसकी बहुउपयोगिता और आकर्षक स्वरूप इसे एक अनमोल पुष्प बनाती है।

जलवायु

लिलियम की सफल खेती के लिए अच्छे जल निकास वाली, मिट्टी जिसका पी.एच. मान 6.5 से 7.5 के बीच तथा पुष्पन के लिए दिन का तापमान 15–20 डिग्री सेल्सियस और रात का तापमान 8–10 डिग्री सेल्सियस आदर्श माना गया है। वहीं, विकास की अवस्था में मिट्टी का तापमान कम से कम 20 डिग्री सेल्सियस होना आवश्यक है।

प्रवर्धन

लिलियम सामान्यत कंद द्वारा प्रवर्धित किया जाता है लिलियम के कंदों को आमतौर पर निष्क्रिय मौसम में लगाया जाता है। कंदों को उनकी ऊँचाई के ढाई गुना गहराई में बोना उपयुक्त रहता है जिससे उनका विकास संतुलित रूप से हो सके।

किस्में

लिलियम की कई किस्में उपलब्ध हैं, जिन्हें उनके फूलों के रंग, आकार, और वृद्धि की आदत के अनुसार वर्गीकृत किया गया है। प्रमुख किस्मों को निम्नलिखित समूहों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **एशियाटिक लिलियम (Asiatic lilies)–** एशियाटिक लिलियम का उत्पत्ति एशिया से हुआ है ये किस्में तेजी से बढ़ती हैं और विविध रंगों जैसे पीला, नारंगी, लाल, गुलाबी, सफेद आदि में उपलब्ध होती हैं। इनमें सुगंध बहुत कम या नहीं होता है।

प्रमुख किस्में– ब्लैकआउट, वाइट किस, बटर नट, पाविया फायर क्रैकर इत्यादि।

2. ओरिएंटल लिलियम (Oriental lilies)– ओरिएंटल लिलियम का उत्पत्ति जापान से हुआ है इसके बड़े फूल, तीव्र सुगंध और सुंदर रंग संयोजन इनकी विशेषताएँ हैं। फूल अंतिम गर्मियों से आते हैं, लेकिन आकर्षण अधिक होता है।

प्रमुख किस्में– पिंक ग्लोरी, मोना लिसा,कास्केड,कैसा ब्लांका इत्यादि।

3. लॉन्गीफ्लोरम हाइब्रिड्स (Longiflorum Hybrids)– इन्हें **ईस्टर लिली** भी कहा जाता है। सफेद रंग के फूल और मध्यम सुगंध होती है।

प्रमुख किस्में– वाइट एलेगांस स्नो क्वीन।

ग्रो बैग का चयन

सामान्यतया 12×12 इंच या 15×15 इंच का ग्रो बैग उपयुक्त होता है। जिसमे जल निकासी के लिए छेद हों। और कम से कम एक बैग में 2–3 कंद आराम से लगाए जा सकते हैं।

मृदा मिश्रण

ग्रो बैग में मिट्टी का सही मिश्रण पर ही लिलियम की खेती निर्भर होती है।

- बगीचे की मिट्टी– 1 भाग
- अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद/कम्पोस्ट– 1 भाग
- बालू– 1 भाग
- वर्मीक्यूलाइट और परलाइट– 1 भाग।

कंदों की रोपाई

कंदों की रोपाई निष्क्रिय मौसम जैसे कि अक्टूबर–नवंबर या मार्च–अप्रैल में उपुक्त मानी जाती है और कंदों को उनकी ऊँचाई के ढाई गुना गहराई में लगाया जाता है और कंदों को रोपने को लगाने से पहले कार्बेन्डाजिम (0.2%) या ट्राइकोडर्मा से अच्छी तरह उपचारित करते है।

सिंचाई प्रबंधन

पहली सिंचाई रोपाई के तुरंत बाद करते है उसके बाद जब–जब ऊपरी मिट्टी सूखी लगे तब हल्की सिंचाई करें। गर्मियों में सिचाई नियमित अन्तराल पर करते है अधिक नमी से कंद सड़ सकते हैं, इसलिए जल निकासी पर विशेष ध्यान देते हैं।

पोषण प्रबंधन

लिलियम की खेती के लिये खाद की अति आवस्यकता होती है बाजार में मिलने वाला लिक्विड खाद जैसे NPK (19:19:19) 5 ग्राम/लीटर हर 10–15 दिन पर स्प्रे करते है कुछ सूक्ष्म पोषक तत्वों का छिड़काव (बोरॉन, जिंक, मैग्नीशियम) फूलों की गुणवत्ता को भी बढाता है।

खरपतवार नियंत्रण

सामान्यत लिलियम में खरपतवार की रोकथाम के लिए समय–समय पर निराई–गुड़ाई करते है। मल्चिंग या प्री–इमरजेंस हर्बीसाइड (जैसे पेंडिमिथालिन) का उपयोग करके भी खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है।

सहारा एवं समर्थन

फूलों की गुणवत्ता बनाये रखने के लिये लंबी किस्मों के फूलो में बांस या तार की सहायता से सहारा देना आवश्यक होता है, ताकि फूलों का झुकाव या टूटना न हो।

लिलियम में शारीरिक असंतुलन

बड ब्लास्ट जो की अत्यधिक ताप और कम प्रकास से होता है इसमें असामायिक कालिया गिर जाती है कृत्रिम प्रकास से उसको रोका जा सकता है।

लीफ स्क्रोच

यह कैल्शियम की कमी और अत्यधिक धुप से होता है इसको रोकने के लिये कैल्शियम क्लोराइड का 1% छिडकाव करते है।

रोग

लीफ स्पॉट– यह एक फफुद से होने वाला रोग है इसमें पत्तियों पर भूरे रंग 1–2 mm के धब्बे पड़ जाते है और पत्तिय गिरने लगती है इसको रोकने के लिये कार्बेन्डाजिम 0.1% का छिडकाव करते है।

बल्ब और स्केल रॉट– इसमें पौधों की बृद्धि रुक जाती है और पत्तियों का रंग पीला पड़ने लगता है और भूमिगत तना नारंगी–भूरे रंग के हो जाते है और कंद धीरे–धीरे मरने लगती हैद्य इसको रोकने के लिये कंद को रोपने से पहले 0.1% कैप्टान से उपचारित करते है।

कीट

लीफ कैटरपिलर लिलियम को सबसे ज्यादा नुकसान पहुचता है इसके लार्वा पत्तियों को खा जाते है जिससे पत्तिया ख़तम हो जाती है और पौधा मर जाता है इसको रोकने के लिये इन्दोक्सोकार्ब /0.75 ml/l पानी के साथ छिडकाव करते है।

उत्पादन

2 से 3 अच्छे फूल प्रति ग्रो बैग से उत्पादन होता हैद्य और 5–7 कंद प्रति बैग से मिलता है द्य

भंडारण– लिलियम के फूलो को 5 डिग्री. सेंटीग्रेड और 95% आद्रता के साथ अंधरे में भंडारित करते है।

■■■

ISSN: 3049-2211

मध्य भारत में खरीफ ज्वार की उन्नत खेती विधि, जलवायु एवं लाभ

महक चंदवानी एवं उज्ज्वल कुमार
पादप कार्यकी कृषि जैव रसायन औषधीय एवं सुगंधित पौधे विभाग
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर छत्तीसगढ़।

परिचय

मध्य भारत का कृषि क्षेत्र, विशेष रूप से छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश, अपनी उपजाऊ भूमि और विविध फसल प्रणालियों के लिए जाना जाता है। इन राज्यों में खरीफ सीजन की प्रमुख फसलों में ज्वार (सोरघम) एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। ज्वार न केवल पारंपरिक आहार का हिस्सा है, बल्कि इसकी सूखा–सहनशीलता, कम जल आवश्यकता और बहुमुखी उपयोगिता के कारण यह आधुनिक कृषि में एक रणनीतिक फसल के रूप में उभर रही है। जलवायु परिवर्तन के कारण मध्य भारत में अनिश्चित वर्षा, सूखे की बढ़ती आवृत्ति और तापमान में वृद्धि जैसी चुनौतियाँ सामने आई हैं। ऐसे में ज्वार जैसी फसलें, जो कम संसाधनों में भी अच्छी उपज देती हैं, किसानों के लिए एक सुरक्षित विकल्प बन गई हैं। छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश में ज्वार की खेती न केवल खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करती है, बल्कि पशुपालन के लिए चारे की आपूर्ति और किसानों की आय बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मध्य भारत में खरीफ ज्वार की खेती

मध्य भारत, विशेषकर छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश में पारंपरिक रूप से धान की खेती प्रमुख होने के बावजूद, जलवायु परिवर्तन और जल संकट के कारण ज्वार की खेती तेजी से लोकप्रिय हो रही है। यह फसल कई मायनों में धान से अधिक लाभदायक साबित हो रही है– इसे उगाने में धान की तुलना में 30–40% कम लागत आती है, साथ ही यह कम पानी (मात्र 3–4 सिंचाई) में भी अच्छी उपज देती है। ज्वार की सूखा–सहनशील प्रकृति इसे जलवायु अनिश्चितता के दौर में किसानों के लिए विश्वसनीय विकल्प बनाती है। इसके अलावा, यह मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने में सहायक है तथा मानव आहार (रोटी, खिचड़ी) और पशु चारे दोनों के रूप में उपयोगी होने से इसकी बाजार मांग स्थिर बनी रहती है। संकर किस्मों के आगमन से अब ज्वार की उत्पादकता में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जिससे यह छोटे और सीमांत किसानों के लिए विशेष रूप से फायदेमंद साबित हो रही है।

खरीफ में ज्वार की उन्नत खेती की प्रक्रिया

भूमि का चयन एवं तैयारी

- छत्तीसगढ़ में खरीफ ज्वार की खेती के लिए उपयुक्त मिट्टी दोमट या बलुई दोमट होती है।
- जल निकास की अच्छी सुविधा होनी चाहिए ताकि जलभराव न हो।
- जुताई करनी चाहिए ताकि मिट्टी समतल और भुरभुरी हो जाए।
- गोबर की खाद या जैविक खाद को मिट्टी में अच्छी तरह मिलाना चाहिए जिससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहे।

बुवाई का सही समय

खरीफ ज्वार की बुवाई मानसून की शुरुआत के साथ जून के अंत से जुलाई के मध्य तक करनी चाहिए। देर से बुवाई करने पर फसल की पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

बीज दर एवं बीज उपचार

प्रति हेक्टेयर 8 से 10 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। बीजों को बुवाई से पहले कार्बेन्डाजिम या ट्राइकोडर्मा से उपचारित करना चाहिए ताकि फफूंद जनित बीमारियों से बचा जा सके।

बुवाई की विधि एवं अंतर

- बीज को कतारों में बोना चाहिए जिससे फसल की वृद्धि अच्छी हो।
- कतार से कतार की दूरी 25 से 30 सेमी और पौधे से पौधे की दूरी 10 से 15 सेमी होनी चाहिए।
- अधिक घनत्व से बचने के लिए बुवाई के 10 से 15 दिन बाद अनावश्यक पौधों को निकाल देना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

- संतुलित पोषक तत्त्वों की पूर्ति के लिए 80 से 100 किलोग्राम नाइट्रोजन 40 से 50 किलोग्राम फास्फोरस और 40 से 50 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर देना चाहिए।
- 50 प्रतिशत नाइट्रोजन और सम्पूर्ण फास्फोरस व पोटाश बुवाई के समय डालना चाहिए शेष 50 प्रतिशत नाइट्रोजन टॉप ड्रेसिंग के रूप में 30 से 35 दिन बाद दें।
- जैविक खेती के लिए गोबर खाद, वर्मी कम्पोस्ट और जैव उर्वरकों का उपयोग करें।

सिंचाई एवं जल प्रबंधन

- खरीफ मौसम में ज्वार की खेती वर्षा आधारित होती है, लेकिन वर्षा की अनिश्चितता के कारण आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए।
- प्रमुख सिंचाई अवस्थाएँ बुवाई के तुरंत बाद फूल आने के समय और दाने बनने की अवस्था में सिंचाई आवश्यक होती है।
- जल निकास का उचित प्रबंधन करें ताकि जलभराव की समस्या न हो।

खरपतवार नियंत्रण

फसल को खरपतवार मुक्त रखने के लिए 20 से 25 दिन और 40 से 45 दिन बाद निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। रसायनिक नियंत्रण के लिए एट्राज़ीन 1 किग्रा प्रति हेक्टेयर का छिड़काव बुवाई के बाद किया जा सकता है।

फसल सुरक्षा एवं रोग प्रबंधन

- प्रमुख कीट तना छेदक हरा तेला माहू। जैविक नियंत्रण के लिए नीम तेल या जैविक कीटनाशकों का उपयोग करें।
- मुख्य रोग ज्वार का करपा रोग अर्गट रोग और स्मट रोग। बीज उपचार और उचित फसल चक्र अपनाने से इन रोगों से बचा जा सकता है

कटाई एवं भंडारण

फसल पकने में 100 से 110 दिन लगते हैं। जब पौधे का 80 प्रतिशत भाग सूख जाए और दाने सख्त हो जाए तब कटाई करें। कटाई के बाद फसल को धूप में सुखाकर उचित नमी स्तर पर भंडारित करें। भंडारण से पहले अनाज को कीट–मुक्त करने के लिए नीम की पत्तियों का उपयोग करें या भंडारण कीटनाशकों का छिड़काव करें।

■■■

ISSN: 3049-2211

कृषि प्रगति में प्रौद्योगिकी की अहम् भूमिका

डॉ दिनेश रजक, डॉ विशाल कुमार– सह प्राध्यापक
डॉ देवेन्द्र कुमार– प्राध्यापक
प्रसंसकरण एवं खाद्य अभियन्त्रिकी विभाग, कृषि अभियंत्रण एवं प्रौधोगीकी महविद्यालय
डॉ0 रा0 प्र0 कें0 कृ0 वि0 पूसा, समस्तीपुर, बिहार।

परिचय

भारतीय कृषि प्रणाली ने पिछले कुछ दशकों में कई जटिल चुनौतियों का सामना किया है, जिनमें जलवायु परिवर्तन, घटती भूमि उत्पादकता, जल संसाधनों की कमी, और पारंपरिक कृषि विधियों की सीमाएं शामिल हैं। इन समस्याओं से निपटने के लिए, प्रौद्योगिकी का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है। तकनीकी नवाचारों ने न केवल कृषि के विभिन्न पहलुओं में क्रांति ला दी है, बल्कि किसानों के जीवन में भी महत्वपूर्ण सुधार किया है।

आज के समय में, कृषि क्षेत्र में तकनीकी प्रगति ने खेती के पारंपरिक तरीकों को पूरी तरह से बदल दिया है। आधुनिक तकनीकों का उपयोग न केवल उत्पादन में वृद्धि करता है, बल्कि किसानों की आय और जीवन स्तर में भी सुधार होता है। जैसे–जैसे नई तकनीकें खेती में उपयोगी साबित हो रही हैं, किसानों को बेहतर उपकरण, उन्नत बीज, और सटीक सिंचाई जैसी सुविधाएं मिल रही हैं, जो उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा को बढ़ाती हैं।

हालांकि, इन तकनीकों को अपनाने में कुछ चुनौतियां भी हैं। उच्च प्रारंभिक लागत, तकनीकी ज्ञान की कमी, और बुनियादी ढांचे की कमी जैसी समस्याएं किसानों के लिए बाधा उत्पन्न कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त, तकनीकी बदलावों को लागू करने के लिए प्रशिक्षण और शिक्षा की आवश्यकता है ताकि किसान सही तरीके से इनका उपयोग कर सकें।

इन समस्याओं का समाधान करने के लिए, सरकार और निजी क्षेत्र दोनों को मिलकर काम करने की आवश्यकता है। यदि इन तकनीकी अवसंरचनाओं को अधिक सुलभ और किफायती बनाया जाए, तो भारतीय कृषि क्षेत्र में तकनीकी नवाचारों का प्रभाव और भी अधिक सकारात्मक हो सकता है।

कृषि प्रगति में प्रौद्योगिकी का महत्व

- **उत्पादन में वृद्धि–** प्रौद्योगिकी का उपयोग कृषि उत्पादन को बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण कारक साबित हुआ है। नवीनतम तकनीकों और वैज्ञानिक अनुसंधान के माध्यम से अधिक उपजाऊ, रोग–प्रतिरोधी, और पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल बीजों का विकास किया गया है। इसके परिणामस्वरूप, किसान अब अधिक गुणवत्ता और मात्रा में उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं, जिससे उनकी आय में भी वृद्धि हो रही है।
- **संसाधनों का प्रभावी प्रबंधन–** कृषि प्रगति के लिए जल, भूमि और ऊर्जा जैसे संसाधनों का कुशल उपयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रौद्योगिकी के माध्यम से, किसानों को जल प्रबंधन, सिंचाई तकनीकों और मिट्टी की गुणवत्ता के बारे में सटीक जानकारी मिलती है। उदाहरण के तौर पर, ड्रिप इरिगेशन और स्प्रिंकलर सिस्टम जैसी तकनीकों के जरिए जल का प्रभावी उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है, जिससे जल संसाधनों की बचत होती है और फसल की वृद्धि भी बेहतर होती है।
- **विपणन और वितरण–** प्रौद्योगिकी ने कृषि उत्पादों के विपणन और वितरण को भी काफी सरल और सुलभ बना दिया है। ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म और मोबाइल ऐप्स की मदद से किसान अब अपने उत्पादों को सीधे उपभोक्ताओं या बाजारों में बेच सकते हैं, जिससे उन्हें उचित मूल्य मिलता है और बिचौलियों की भूमिका कम होती है। इससे न केवल किसानों को अधिक मुनाफा होता है, बल्कि कृषि उत्पादों की आपूर्ति श्रृंखला भी अधिक पारदर्शी और प्रभावी बनती है।

कृषि में आधुनिक प्रौद्योगिकी की चुनौतियां

- **उच्च प्रारंभिक लागत–** आधुनिक तकनीकों का उपयोग करने में उच्च प्रारंभिक लागत एक प्रमुख चुनौती बन सकती है, खासकर छोटे और सीमांत किसानों के लिए। ड्रोन, सेंसर्स, और अन्य उच्च तकनीकी उपकरणों की खरीद और रखरखाव की लागत बहुत अधिक होती है, जो किसानों के लिए इसे अपनाना कठिन बना देती है। इस आर्थिक बाधा के कारण, कई किसान नई तकनीकों का लाभ नहीं उठा पाते और पारंपरिक तरीकों का पालन करने को मजबूर होते हैं।
- **तकनीकी जानकारी का अभाव–** कई किसानों के पास आवश्यक तकनीकी ज्ञान और प्रशिक्षण की कमी होती है, जिसके कारण वे आधुनिक तकनीकों का प्रभावी उपयोग करने में सक्षम नहीं होते। इस समस्या का समाधान करने के लिए व्यापक और सुलभ प्रशिक्षण कार्यक्रमों की आवश्यकता है, जिससे किसान नई तकनीकों को सही तरीके से समझ सकें और उनका प्रभावी उपयोग कर सकें। ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम किसानों को न केवल तकनीकी कौशल प्रदान करेंगे, बल्कि उनके आत्मविश्वास को भी बढ़ावा देंगे।
- **बुनियादी ढांचे की कमी–** कई ग्रामीण क्षेत्रों में आवश्यक बुनियादी ढांचे की कमी होती है, जैसे कि उचित इंटरनेट कनेक्टिविटी, बिजली की आपूर्ति, और सड़कें। यह एक बड़ी चुनौती है, क्योंकि प्रौद्योगिकी का प्रभावी उपयोग इन बुनियादी सुविधाओं पर निर्भर करता है। बिना इन सुविधाओं के, किसानों के लिए आधुनिक तकनीकों का पूरा लाभ उठाना मुश्किल हो जाता है, और कृषि में तकनीकी सुधार की दिशा में प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है।
- **सांस्कृतिक बाधाएं–** कई किसान पारंपरिक तरीकों से खेती करने के आदी होते हैं और नई तकनीकों को अपनाने में संकोच करते हैं। उन्हें नई तकनीकों के फायदे और उनके दीर्घकालिक लाभों के बारे में जागरूक करना जरूरी है, ताकि वे इन तकनीकों को अपनाने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो सकें। इसके लिए जागरूकता अभियान और स्थानीय उदाहरणों के माध्यम से उनके विश्वास को बढ़ाना आवश्यक है, जिससे उनकी मानसिकता में बदलाव आ सके।

किसानों को कृषि प्रगति में प्रौद्योगिकी के होने वाले लाभ

- अधिक उत्पादन और आय में वृद्धिरू प्रौद्योगिकी के उपयोग से कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि होती है। उन्नत बीज, सटीक सिंचाई तकनीक, और प्रभावी फसल प्रबंधन उपकरणों की मदद

से किसान अपनी फसलों की गुणवत्ता और मात्रा दोनों में सुधार कर सकते हैं। इससे न केवल उत्पादन बढ़ता है, बल्कि किसानों की आय भी अधिक होती है। जब किसान अधिक उपज प्राप्त करते हैं, तो वे बेहतर बाजार मूल्य पर अपनी फसल बेच सकते हैं, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत होती है।

- **समय और श्रम की बचत–** प्रौद्योगिकी के माध्यम से कृषि कार्यों में समय और श्रम की बचत होती है। जैसे, ड्रोन, रोबोटिक्स, और ऑटोमेटेड उपकरणों की मदद से बुआई, सिंचाई, और कटाई जैसे कार्य तेजी से और कम श्रम में किए जा सकते हैं। इससे किसानों को अपना समय अन्य महत्वपूर्ण कार्यों में लगाने का अवसर मिलता है, और उनकी मेहनत भी कम होती है। साथ ही, तकनीकी उपकरणों के उपयोग से काम में अधिक सटीकता और दक्षता भी आती है, जिससे पूरे कृषि कार्य की प्रक्रिया अधिक आसान और प्रभावी हो जाती है।
- **पर्यावरण की सुरक्षा–** प्रौद्योगिकी के उपयोग से कृषि में पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। सटीक कृषि तकनीकों, जैसे ड्रिप सिंचाई और स्मार्ट फर्टिलाइज़र एप्लिकेशन, से जल और रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कम होता है, जिससे प्राकृतिक संसाधनों की बचत होती है। इसके अलावा, जैविक खेती और कीटनाशकों के नियंत्रित उपयोग से मृदा और जल की गुणवत्ता में सुधार होता है। ड्रोन और सेंसर्स के माध्यम से फसलों की निगरानी करके, किसानों को कीटों और बीमारियों का समय रहते पता चलता है, जिससे कीटनाशकों का अति प्रयोग भी कम होता है। इस तरह, प्रौद्योगिकी पर्यावरण को संरक्षित रखने में मदद करती है और सतत कृषि को बढ़ावा देती है।
- **बाजार पहुंच और मूल्य वृद्धि–** प्रौद्योगिकी ने किसानों को बाजार तक सीधे पहुंचने के कई नए रास्ते प्रदान किए हैं। ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म और मोबाइल ऐप्स की मदद से किसान अब अपने उत्पादों को सीधे उपभोक्ताओं या थोक बाजारों में बेच सकते हैं, जिससे उन्हें अधिक पारदर्शी और बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। इसके अलावा, तकनीकी सहायता से उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार होता है, जिससे उनका बाज़ार में मूल्य बढ़ता है। इससे बिचौलियों की भूमिका घटती है, और किसान अपनी मेहनत का सही मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार, प्रौद्योगिकी किसानों के लिए बाजार तक पहुंच को आसान और लाभकारी बनाती है।
- **मौसम और फसल की निगरानी–** प्रौद्योगिकी ने मौसम और फसल की निगरानी को अधिक सटीक और प्रभावी बना दिया है। सेंसर्स, ड्रोन, और उपग्रह इमेजरी की मदद से किसान अपने खेतों का नियमित रूप से निरीक्षण कर सकते हैं और मौसम के बदलावों का पहले से अनुमान लगा सकते हैं। इससे उन्हें फसल सुरक्षा के लिए सही समय पर कदम उठाने का अवसर मिलता है, जैसे कीट नियंत्रण, सिंचाई और पोषक तत्वों का उचित प्रयोग। इसके अलावा, स्मार्ट एग्रीकल्चर प्लेटफॉर्म्स द्वारा मौसम पूर्वानुमान और विश्लेषण किसानों को उनके क्षेत्र विशेष जलवायु परिवर्तन के बारे में समय रहते जानकारी देते हैं, जिससे वे अपनी फसल की बेहतर देखभाल कर सकते हैं और उत्पादकता में वृद्धि कर सकते हैं।
- **कृषि वित्त और बीमा–** प्रौद्योगिकी ने कृषि वित्त और बीमा क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण सुधार किया है। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स और मोबाइल ऐप्स के माध्यम से किसान अब आसानी से ऋण और वित्तीय सहायता प्राप्त कर सकते हैं, जिससे उन्हें अपने कृषि कार्यों के लिए आवश्यक पूंजी मिल जाती है। इसके अलावा, कृषि बीमा योजनाओं में भी डिजिटल प्रक्रिया ने किसानों के लिए सुविधा बढ़ा दी है। स्मार्ट डेटा और AI आधारित मॉडल्स के जरिए, किसान अपने फसल जोखिमों का मूल्यांकन कर सकते हैं और सही बीमा योजनाओं का चयन कर सकते हैं। इससे प्राकृतिक आपदाओं, सूखा, और अन्य अनिश्चितताओं से होने वाले वित्तीय नुकसान से सुरक्षा मिलती है। इस प्रकार, प्रौद्योगिकी किसान को बेहतर वित्तीय सुरक्षा और जोखिम प्रबंधन का अवसर प्रदान करती है।

किसानों को कृषि प्रगति में प्रौद्योगिकी से होने वाले लाभों के बारे में जागरूक करना आवश्यक है। प्रौद्योगिकी के माध्यम से किसानों को बेहतर बीज, उन्नत सिंचाई प्रणालियां, और सटीक कृषि उपकरण मिलते हैं, जो उनकी उत्पादकता बढ़ाने में मदद करते हैं। इसके अलावा, प्रौद्योगिकी के उपयोग से फसल सुरक्षा, रोगों की पहचान, और जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटना आसान हो जाता है। किसानों को इसके माध्यम से उचित मूल्य पर अपने उत्पादों को बेचने का मौका भी मिलता है, जिससे उनकी आय में वृद्धि होती है। इन सभी लाभों को समझने के बाद, किसान न केवल अपनी उपज में सुधार कर सकते हैं, बल्कि अपने जीवन स्तर में भी सकारात्मक बदलाव ला सकते हैं।

ड्रैगन फ्रूट की वैज्ञानिक खेती उत्तर प्रदेश में किसानों के लिए कमाई का नया स्रोत

सौरभ वर्मा– शोध छात्र
डॉ. रवि शंकर वर्मा– सहायक प्राध्यापक
बिपिन कुमार एवं श्याम सुंदर– शोध छात्र
एस.ए.एस.टी., उद्यानिकी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)।

ड्रैगन फल (पिताया) एक उष्णकटिबंधीय कैक्टस जनित फल है, जो अपने पोषक तत्वों और आर्थिक मूल्य के कारण उत्तर प्रदेश के किसानों के लिए एक नकदी फसल के रूप में उभर रहा है। लाल गुदा वाली प्रजाति (Hylocereus polyrhizus) एंटीऑक्सीडेंट्स, विटामिन सी, और फाइबर से भरपूर होने के साथ–साथ उच्च बाजार मूल्य (₹200–400 प्रति किलो) वाली प्रजाति है। लखनऊ की उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु (तापमान 20–40°C, मध्यम वर्षा) और दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए आदर्श है। वैज्ञानिक तकनीकों जैसे गहरी जुताई, जैविक खाद, ड्रिप सिंचाई, तथा सीमेंट के खंभों पर ट्रेलिस संरचना का उपयोग करके प्रति एकड़ 1,700–2,000 पौधे लगाए जाते हैं। फूलों के हस्त परागण और नियमित प्रूनिंग से उत्पादन को बढ़ावा दिया जाता है। आर्थिक दृष्टि से ड्रैगन फल की खेती अत्यंत लाभदायक है। तीसरे वर्ष में प्रति एकड़ 5–8 टन उत्पादन होता है, जिससे ₹10–12 लाख का शुद्ध लाभ संभव है। लखनऊ के निकट बड़े बाजारों और हवाई अड्डे की पहुँच निर्यात को सुगम बनाती है। स्थानीय किसानों ने समूह खेती और ऑनलाइन बिक्री के माध्यम से सफलता प्राप्त की है, जैसे मलिहाबाद के किसान संजय सिंह ने 3 एकड़ से ₹18 लाख वार्षिक आय अर्जित की। हालाँकि, इसकी खेती में प्रारंभिक निवेश (₹1दृ1.5 लाख प्रति एकड़), फलों की नाजुकता, तथा फंगल रोगों जैसी चुनौतियाँ भी हैं। इनके समाधान हेतु सरकारी योजनाएँ (MIDH के तहत 50% सब्सिडी), जैविक कीटनाशकों का उपयोग, और कोल्ड चेन इंफ्रास्ट्रक्चर विकास महत्वपूर्ण हैं। भविष्य में क्लस्टर खेती, ष्लखनऊ रेड ड्रैगनष् ब्रांडिंग, तथा युवाओं को प्रसंस्कृत उत्पादों (जैम, जूस) से जोड़कर क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था को मजबूती दी जा सकती है।

1. परिचयः ड्रैगन फल का महत्व एवं विशेषताएँ

ड्रैगन फल (पिताया) एक उष्ण कटिबंधीय कैक्टस जनित फल है, जो अपने आकर्षक रंग और पौष्टिक गुदे के लिए प्रसिद्ध है। लाल गुदा वाली प्रजाति (Hylocereus polyrhizus) एंटीऑक्सीडेंट्स, विटामिन सी, और फाइबर से भरपूर होने के कारण ष्सुपरफूडष् मानी जाती है। मध्य अमेरिका के मूल निवासी यह फल भारत में गुजरात, महाराष्ट्र, और लखनऊ जैसे क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा रहा है। लखनऊ की जलवायु (तापमान 20–40°C, मध्यम वर्षा) और दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए आदर्श है।

2. लखनऊ की जलवायु एवं मिट्टी की उपयुक्तता

लखनऊ की उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु ड्रैगन फल के अनुकूल है–

- तपमान– गर्मियों में 30–40°C और सर्दियों में 8–22°C।
- वर्षा– 800–900 उउ वार्षिक, जलभराव से बचाव आवश्यक।
- मिट्टी– दोमट मिट्टी (पी.एच. 6–7.5) जल निकासी और पोषक तत्वों के लिए उत्तम।
- सुधार– अम्लीय मिट्टी में चूना मिलाकर पी.एच. संतुलित करें।

3. खेती की उन्नत तकनीक

क. मिट्टी की तैयारी

- गहरी जुताई (60 cm) और 10–15 kg गोबर खाद प्रति गड्ढा।
- 2×2 मीटर की दूरी पर पौधारोपण।

ख. पौध रोपण

- कटिंग विधि (30–40 cm लंबी) से रोपण, फरवरी–मार्च या जुलाई–अगस्त उपयुक्त।
- सीमेंट के खंभों (1.5–2 मीटर) पर ट्रेलिस बनाकर समर्थन दें।

ग. सिंचाई प्रबंधन

- ड्रिप सिस्टम से सप्ताह में 2–3 बार सिंचाई।
- मानसून में जलभराव रोकने के लिए नालियाँ बनाएँ।

घ. खाद एवं उर्वरक

- रोपण के समय 500 ग्राम SSP प्रति गड्ढा।
- NPK (10:26:26) 50–100 ग्राम प्रति पौधा, तीन महीने के अंतराल पर।

ङ. प्रूनिंग एवं रखरखाव

- अतिरिक्त शाखाओं और रोगग्रस्त भागों की कटाई।
- रात्रि में हस्त परागण या मधुमक्खी बक्से का उपयोग।

4. आर्थिक लाभ एवं बाजार संभावनाएँ

- उच्च मुनाफा– प्रति एकड़ 5–8 टन उत्पादन, शुद्ध लाभ ₹10–12 लाख।
- बाजार मूल्य– लाल गुदा वाला फल ₹200–400/kg तक बिकता है।
- निर्यात– दुबई, यूरोप में मांग, लखनऊ के निकट हवाई अड्डे से सुविधाजनक।

- मूल्यवर्धन– जैम, जूस, और प्राकृतिक रंगों के उत्पाद बनाकर आय बढ़ाएँ।

सफलता उदाहरण

- मलिहाबाद के किसान संजय सिंह ने 3 एकड़ से ₹18 लाख सालाना कमाई की।
- 50 किसानों के FPO ने समूह खेती और ऑनलाइन बिक्री से लाभ कमाया।

5. चुनौतियाँ एवं समाधान

क. जलवायु समस्याएँ

- गर्मी– शेड नेट (50%) से तापमान नियंत्रण।
- सर्दी– पुआल मल्चिंग या शेड नेट से ठंड से बचाव।

ख. कीट एवं रोग

- फंगल रोग– नीम तेल (5 उस/लीटर) और गोमूत्र का छिड़काव।
- फ्रूट फ्लाई– नायलॉन जाल या पेपर बैग से फलों को ढकें।

ग. तकनीकी अभावः कृषि विज्ञान केंद्र (KVK) से प्रशिक्षण।

घ. उच्च निवेश

- सरकारी अनुदान (MIDH योजना के तहत 50% सब्सिडी)।
- स्थानीय सामग्री (बांस के खंभे) से लागत कम करें।

ङ. बाजार पहुँच

- कोल्ड स्टोरेज और प्री–कूलिंग सुविधाएँ विकसित करें।
- ऑनलाइन प्लेटफॉर्म (फार्मरजी, सिटीफार्म) के माध्यम से बिक्री।

6. भविष्य की रणनीतियाँ एवं निष्कर्ष

- **क्लस्टर खेती–** लखनऊ के आसपास 10–15 गाँवों को ड्रैगन फल हब के रूप में विकसित करना।
- **ब्रांडिंग– लखनऊ रेड ड्रैगन** के नाम से जीआई टैग प्राप्त कर वैश्विक बाजार में पहचान बनाएँ।
- **युवा एवं महिलाएँ–** एग्री–स्टार्टअप और स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से प्रसंस्कृत उत्पाद बेचें।
- **सरकारी सहयोग–** कोल्ड चेन इंफ्रास्ट्रक्चर और FPO को प्रोत्साहन।

निष्कर्ष

ड्रैगन फल उत्तर प्रदेश की कृषि अर्थव्यवस्था को बदलने की क्षमता रखता है। तकनीकी प्रशिक्षण, सरकारी नीतियों, और बाजार संपर्क के समन्वय से लखनऊ इसके उत्पादन में अग्रणी बन सकता है। यह न केवल किसानों की आय बढ़ाएगा, बल्कि स्वास्थ्यपरक खाद्य उत्पादों की बढ़ती मांग को भी पूरा करेगा।

कृषक मंच
ISSN: 3049-2211

नरमे के रोग और उनका निवारण

पूजा, प्रशांत चौहान
पादप रोग विभाग
चौ० चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविधालयभारत।

नरमा खरीफ ऋतु की मुख्य नकदी फसल है, जिसकी बीजाई 15 अप्रैल से जून के पहले पखवाड़े तक की जाती है। बीज की मात्रा देसी प्रजाति के लिये 5 किग्रा० प्रति एकड़ (67.5×30 सेंटीमीटर, बी टी संकर के लिये 0.850 किग्रा० प्रति एकड़ और अमेरिकन प्रजाति के लिये 6–8 किग्रा० प्रति एकड़ (100×20 सेंटीमीटर) पर्याप्त होती है। बीज के ज्यादा उपज के लिए उसको बीजाई से पहले 5–6 घंटों के लिए पानी मे भिगो देना चाहिए, बीज की बुवाई 4–5 सेंटीमीटर की गहराई पर करनी चाहिए।

नरमे में खाद

सभी खादों का इस्तेमाल मिट्टी की जांच कराने के बाद ही करें। यूरिया–75–150 किग्रा०, सिंगल सुपर फास्फेट–60 किग्रा०, मूरेट ऑफ़ पोटाश–40 किग्रा०, जिंक सल्फेट–10 किग्रा० खाद प्रति एकड़।

ट्रैक्टर चालित हैरो खेत की तैयारी के लिये हरियाणा में इस्तेमाल की जाती है तथा बीजाई के बाद भी नरमे की फसल में एक से दो बार खरपतवार को पहली सिंचाई से पहले निकाल देना चाहिए तथा पहली सिंचाई के बाद कसले की सहायता से एक दो बार खरपतवार को साफ कर दें। इसकी फसल काल मे 800–1000 मिमी० पानी की आवश्यकता पड़ती हैं। जिसके लिये अप्रैल से सितंबर माह मे फसल को सूखे से बचाने के लिये चार पानी लगाने की जरूरत होती है बाकी पानी की पूर्ति वर्षा द्वारा हो जाती है। हरियाणा मे नरमे के लिये उपयुक्त फसल चक्र नरमा– गेहूं , नरमा– सरसों, नरमा– बरसीम हैं।

नरमे की किस्में

देसी किस्में– DS–1, DS–5, HD 107, HD 123, HD 324, AAH 1 (संकर)

अमेरिकन किस्में– H 777, H 655 C, HS 45, HD–6, H 974, H 1098, H 1098 (संशोधित), H 1117, H 1226, H 1236, H 1300

अमेरिकन कपास की संकर किस्में– HHH 223, HHH 287

नरमे की फसल बहुत से रोगों का सामना करती हैं जोकि विषाणु, जीवाणु एवं फफूंद जनित होते है। जिनके मुख्य लक्षण और निदान इस प्रकार हैं–

पत्ता मरोड रोग

पत्ता मरोड़ रोग सफ़ेद मक्खी से फैलने वाला विषाणु जनित रोग है। इस रोग के लक्षणों मे पत्तों की नसें मोटी हो जाती हैं तथा कई बार छोटी व बड़ी नसों पर छोटी–छोटी पत्तियां निकल आती हैं। बीमारी के अग्रिम चरणों मे बढ़वार रुक जाती हैं और पौधों में उपज कम हो जाती हैं।

निवारण

- नरमे को नींबू जाती के बागों मे और भिंडी के खेतों के नजदीक न लगायें।
- फसल मे शुरू से ही बीमारी वाले पौधों समय –समय पर उखाड़कर दबाते रहे।
- नरमे की फसल को सफ़ेद मक्खी से बचाने के लिये सिफारिश तरीके अपनायें।

जड़ गलन

यह रोग फफूंद के कारण लगता है जिसके लक्षणों मे पत्तों का मुरझा कर सड़ना और पौधों का पूरी तरह सुख जाना आता है। खेत को देखने पर यह बीमारी गोल घेरों के रूम मे दिखाई देती है व रोगी पौधों को खींचने पर वे आसानी से बाहर निकल आते है। पौधे की जड़े काली पड़ जाती हैं।

निवारण: 2 किग्रा० ट्राइकोडर्मा को 50 किग्रा० गोबर की खाद मे मिलाकर 15 दिन छाया मे रख दें और बुवाई के समय इस्तेमाल करें।

पैरा विल्ट

यह रोग किसी जीवाणु या विषाणु से नहीं होता बल्कि खेत मे एक लंबे अंतराल के बाद पानी लगाने पर या भारी बरसात होने पर उत्पन्न होता है जिसमें पौधे अचानक से मुरझा जाते है और कुछ दिनों के बाद सड़ जाते हैं। इसमे पौधों की जड़े ठीक रहती हैं।

निवारण: जल निकासी का समुचित प्रबंध रखे।

तिडक

इसमे पत्ते लाल हो जाते है और टिण्डे सही से नहीं खिलते हैं, यह बीमारी कम लगती हैं, जहां सूखा इलाका होता है जैसे हरियाणा के साथ लगने वाले इलाके। इसके होने के मुख्य कारण पानी का लंबे समय से न देना, हल्की रेतीली जमीनों मे खुरकी तत्वों की कमी का होना तथा फूल व टिण्डा आने पर बहुत ज्यादा गर्मी का होना यह बीमारी फैलता है।

निवारण

- खाद की पूरी मात्र दें।
- सही समय पर सिंचाई करे खासतौर पर फूल और फल बनने के समय।

ISSN: 3049-2211

जैविक खेती में जैव कीटनाशकों का महत्व

डॉ. नीलेश रायपुरिया
सहायक प्राध्यापक
कीटशास्त्र विभाग, बी.एम., कृषि महाविद्यालय, खंडवा (म. प्र.) भारत।

1. परिचय

वैश्विक जनसंख्या तेजी से विस्फोट कर रही है और 2050 तक लगभग 9.7 बिलियन तक पहुंचने का अनुमान है, जिसका सबसे बड़ा हिस्सा अफ्रीका और एशिया में है। इसने खाद्य मांगों को पूरा करने के मामले में कृषि और इसके संबद्ध क्षेत्रों पर एक बड़ा बोझ डाला है, जिसके लिए फसल उत्पादन के लिए अधिक इनपुट की आवश्यकता होती है।

उन्नत कृषि उत्पादकता कई तरीकों से प्राप्त की जा सकती है, जैसे कि जैव कीटनाशकों सहित उर्वरक और जैविक–आधारित उपचार प्रदान करके फसल की उपज बढ़ाना, या अत्यधिक पर्यावरणीय परिस्थितियों (जैसे जैविक और अजैविक तनाव) के कारण उपज हानि को सीमित करना। बायोस्टिमुलेंट्स और बायोइफ़ेक्टर्स के उपयोग से अजैविक तनाव को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।

कृषि क्षेत्रों में रोगजनकों और कीटों से होने वाले नुकसान को कम करने के लिए फसल सुरक्षा में उपयोग किए जाने वाले रासायनिक कीटनाशक, उनके हानिकारक दुष्प्रभावों के कारण जीवित प्राणियों के लिए कई दीर्घकालिक खतरे और जोखिम पैदा करते हैं।

2. जैव कीटनाशकों के प्रकार–

2.1 माइक्रोबियल कीटनाशक

ये बैक्टीरिया, कवक और वायरस सहित सूक्ष्मजीवों से प्राप्त होते हैं। इन जीवों से पृथक सक्रिय अणु/यौगिक विशिष्ट कीट प्रजातियों या एंटोमोपैथोजेनिक नेमाटोड पर हमला करते हैं। जिन्हें जैव कीटनाशक के रूप में जाना जाता है।

बैक्टीरियल एंटोमोपैथोजेन्स के प्रमुख समूहों में स्यूडोमोनास, यर्सिनिया, क्रोमोबैक्टीरियम आदि की प्रजातियां शामिल हैं, जबकि कवक में ब्यूवेरिया, मेटारिज़ियम, वर्टिसिलियम, लेकेनिसिलियम, हिर्सुटेला, पेसिलोमाइसेस आदि की प्रजातियां शामिल हैं। अन्य महत्वपूर्ण माइक्रोबियल कीटनाशक उत्पादक बैकोलोवायरस हैं जो प्रजाति–विशिष्ट हैं और उनके संक्रामकता क्रिस्टलीय रोड़ा निकायों से जुड़ी होती है जो चबाने वाले कीड़ों (लेपिडोप्टेरान कैटरपिलर) के खिलाफ सक्रिय होती हैं।

2.2 जैव रासायनिक कीटनाशक

जैव रासायनिक कीटनाशक स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होने वाले उत्पाद हैं जिनका उपयोग गैर–विषैले तंत्र के माध्यम से कीटों को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है, जबकि रासायनिक कीटनाशक सिंथेटिक अणुओं का उपयोग करते हैं जो सीधे कीटों को मारते हैं। जैव रासायनिक कीटनाशकों को आगे विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है, जो इस बात पर निर्भर करता है कि क्या वे फेरोमोन (अर्ध–रसायन), पौधों के अर्क/तेल, या प्राकृतिक कीट विकास नियामकों का शोषण करके कीटों के संक्रमण को नियंत्रित करने में कार्य करते हैं।

2.3 पौधे आधारित अर्क और आवश्यक तेल

पिछले कई वर्षों में, पौधे आधारित अर्क और आवश्यक तेल कीट कीट प्रबंधन के लिए सिंथेटिक कीटनाशकों के आकर्षक विकल्प के रूप में उभरे हैं। कीट प्रजातियों की शारीरिक विशेषताओं के साथ–साथ पौधे के प्रकार, पौधों के अर्क और आवश्यक तेलों के आधार पर कीड़ों के खिलाफ कई प्रकार की क्रियाएं प्रदर्शित होती हैंः वे विकर्षक, आकर्षित करने वाले या एंटीफीडेंट के रूप में कार्य कर सकते हैं; वे श्वसन को भी बाधित कर सकते हैं, कीटों द्वारा मेजबान पौधों की पहचान में बाधा डाल सकते हैं, डिंबोत्सर्जन को रोक सकते हैं और ओविसाइडल और लार्वासाइडल प्रभावों द्वारा वयस्क उद्भव को कम कर सकते हैं।

3. जैव कीटनाशकों की क्रिया का तरीका

जैवकीटनाशक सूक्ष्मजीवों पर उनके प्रकार और प्रकृति के आधार पर विभिन्न प्रकार से कार्य करते हैं। कुछ तंत्र जिनके माध्यम से जैव कीटनाशक रोगजनकों पर हमला करते हैं या मारते हैं, उन्हें निम्नानुसार सूचीबद्ध किया गया है–

3.1. माइक्रोबियल जैव कीटनाशक

कवकनाशी और जीवाणुनाशक– ये बायोपेस्टीसाइड आमतौर पर अनुवाद की प्रक्रिया को बाधित या बाधित करते हैं और इस प्रकार प्रोटीन संश्लेषण को कई तरीकों से बाधित करते हैं, जिसमें प्रोकैरियोट्स में 50 राइबोसोम के बंधन के माध्यम से, पेप्टाइड्स के हस्तांतरण को रोकने और श्रृंखला बढ़ाव (जैसे ब्लास्टिसिडिन) को रोकना शामिल है।

वे प्लाज्मा झिल्ली पारगम्यता को भी बाधित कर सकते हैं और पदार्थों (एमिनो एसिड और इलेक्ट्रोलाइट्स) के रिसाव का कारण बन सकते हैं, जिससे कोशिका मृत्यु (जैसे नैटामाइसिन) हो सकती है, और चिटिन सिंथेज़ गतिविधि (पॉलीऑक्सिन) और ग्लूकोज को रोक सकती है।

3.2. जैव रासायनिक कीटनाशक

ये कीटनाशक पौधों से प्राप्त होते हैं। पौधों ने कई यौगिक विकसित किए हैं, जो संक्रमण और हमले के दौरान रोगजनक सूक्ष्मजीवों का मुकाबला करने में मदद कर सकते हैं। इन यौगिकों में स्टेरॉयड, एल्कलॉइड, फेनिलप्रोपानोइड्स, फेनोलिक्स, टरपेनोइड्स और नाइट्रोजनयुक्त यौगिक शामिल हैं। उदाहरण के लिए, निकोटिन 17वीं शताब्दी में तंबाकू के पत्तों से प्राप्त पहला कीटनाशक था जो बेर बीटल को मारने के लिए प्रयोग किया जाता था। तम्बाकू में निकोटिन अधिकांश शाकाहारी कीटों के लिए विषैला होता है।

रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग से कई अवांछनीय प्रभाव हो सकते हैं, जिनमें शामिल हैं–

(क) लाभकारी और गैर–लक्षित जीवों की हत्या और कभी–कभी पुनरुत्थान।
(ख) द्वितीयक पीड़कों का तेजी से गुणन।
(ग) कीटनाशक प्रतिरोध का विकास।
(घ) पर्यावरण/पारिस्थितिकी तंत्र का संदूषण।
(ड.) खाद्य सामग्री में कीटनाशक अवशेषों का संचय।

जैव कीटनाशकों के विकास में उनकी क्षमता के लिए कई सूक्ष्मजीवों का पता लगाया गया है। जिनका उपयोग जैव कीटनाशकों की तैयारी में किया जा सकता है, जिससे फसल सुरक्षा में वृद्धि होती है।

4. जीवाणु आधारित जैव कीटनाशक

जैव कीटनाशकों के रूप में उपयोग किए जाने वाले जीवाणुओं को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, अर्थात, क्रिस्टलीय बीजाणु पूर्वज (जैसे बैसिलस थुरिंजिएन्सिस), बाध्यकारी रोगजनकों (जैसे– *बी. पोपिलिए*), संभावित रोगजनकों (जैसे *सेराटिया मार्सेसेन्स*), और वैकल्पिक रोगजनकों (जैसे– *स्यूडोमोनास एरुगिनोसा* के रूप में)। इनमें से, बीजाणु बनाने वाले जीवाणु व्यावसायिक उपयोग के लिए सबसे अधिक मांग वाले हैं।

5. नैनोबायोपेस्टीसाइड्स

जैव कीटनाशकों में **नैनो** की अवधारणा ने पदार्थों के आकार, संरचना और प्रकृति के कारण क्षेत्र में क्रांति ला दी है, जो 1–100 एनएम के आकार की सीमा में बनते हैं। ये छोटे जैविक रूप से सक्रिय कण रोगजनकों के विकास को या तो नष्ट कर सकते हैं या उन्हें खदेड़ सकते हैं। नैनोएनकैप्सुलेशन, नैनोकंटेनर, और नैनोकेज, उनके अवक्रमण की संपत्ति के कारण, कीट नियंत्रण की स्थिरता और प्रभावकारिता में वृद्धि करते हैं, और नैनोबायोपेस्टीसाइड वितरित करते समय कम मात्रा का उपयोग किया जाता है।

फाइटोपैथोजेन्स के कारण होने वाले नुकसान को नैनोबायोपेस्टीसाइड्स, मुख्य रूप से जस्ता, सोना, चांदी, निकल और टाइटेनियम के धातु नैनोकणों (एनपी) के उनके अंतर्निहित रोगाणुरोधी गुणों के कारण दूर किया जा सकता है। अन्य जैव कीटनाशकों की तुलना में इनके कुछ अतिरिक्त लाभ हैं क्योंकि उनकी बढ़ी हुई घुलनशीलता क्षमता और बढ़ी हुई दक्षता के साथ यौगिक के लक्ष्य–उन्मुख वितरण के कारण। एनपी के संश्लेषण के लिए जीवाणु, कवक और पौधों के अर्क का उपयोग किया जाता है।

6. रासायनिक कीटनाशकों पर जैव कीटनाशकों के गुण

पारंपरिक रासायनिक कीटनाशकों की तुलना में जैव कीटनाशकों के कई गुण हैं। वे पर्यावरण के अनुकूल हैं, विशिष्ट लक्ष्य हैं, और गैर–लक्षित जीवों के लिए हानिकारक नहीं हैं और इसलिए कीट प्रबंधन के लिए सिंथेटिक कीटनाशकों को बदलने के लिए पर्याप्त शक्तिशाली हैं ।

हाल के वर्षों में, जैव कीटनाशकों का उपयोग गति प्राप्त कर रहा है क्योंकि उन्हें स्थायी कृषि पद्धतियों में कुशलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। जैव कीटनाशक कम मात्रा में अत्यधिक प्रभावी होते हैं और समस्याग्रस्त अवशेषों को छोड़े बिना जल्दी से विघटित हो जाते हैं और इसलिए पारंपरिक कीटनाशकों के उपयोग को आईपीएम कार्यक्रमों के अभिन्न अंग के रूप में कम कर सकते हैं। हालांकि, जैव कीटनाशकों के उपयोग के गुणों के बावजूद, उनका उपयोग अपेक्षित रूप से व्यापक नहीं रहा है, निम्नलिखित कारणों से–

1. नए जैविक एजेंटों के लिए स्क्रीनिंग, विकास और नियामक मंजूरी प्राप्त करने में शामिल लागत के कारण कीटनाशक उत्पादन की उच्च लागत;
2. तापमान और आर्द्रता में उतार–चढ़ाव के लिए जैव कीटनाशकों की संवेदनशीलता के कारण अल्प शैल्फ जीवन;
3. तापमान, आर्द्रता, मिट्टी की स्थिति, आदि में जलवायु/क्षेत्रीय भिन्नताओं के कारण सीमित क्षेत्र प्रभावकारिता;
4. जैव कीटनाशकों की उच्च विशिष्टता के कारण, यानी, वे केवल लक्षित रोगजनकों और कीटों के खिलाफ प्रभावी हैं, किसान उनमें रुचि नहीं रखते हैं।

7. निष्कर्ष

बैक्टीरिया, सायनोबैक्टीरिया, या कवक से युक्त जैव उर्वरकों के अनुप्रयोग से मिट्टी की उर्वरता में सुधार और पुनर्स्थापना हो सकती है और हरित प्रौद्योगिकी का उपयोग करके स्थायी कृषि उत्पादन सुनिश्चित किया जा सकता है। जैव कीटनाशकों के रूप में सूक्ष्मजीवों और सूक्ष्म शैवाल का उपयोग करने से सिंथेटिक उर्वरकों की ऊर्जा और खपत की मांग कम हो सकती है और कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र और बंजर भूमि की दक्षता बहाल हो सकती है।

भविष्य में जैव कीटनाशक बाजार के विकास के लिए जैव कीटनाशकों सहित जैविक नियंत्रण एजेंटों पर काफी शोध की आवश्यकता है। वर्तमान परिदृश्य में, कृषि क्षेत्र को जैव कीटनाशकों और रासायनिक कीटनाशकों दोनों पर निर्भर रहने की आवश्यकता है। हालांकि, प्रयोगशाला परिणामों के व्यावहारिक अनुप्रयोग में तेजी लाने से बड़े पैमाने पर औद्योगिक विकास की सुविधा मिलनी चाहिए। हालांकि, कड़े नियमों के कारण जैव कीटनाशकों की आमद ने सिंथेटिक रसायनों के उपयोग को काफी कम कर दिया है।
पारंपरिक रासायनिक कीटनाशकों और जैव कीटनाशकों दोनों के मिश्रित और विवेकपूर्ण उपयोग से बड़े पैमाने पर किसानों और समाज को लाभ होना चाहिए, जबकि भविष्य में इससे अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए जैव कीटनाशकों के क्षेत्र में अनुसंधान पर जोर देना अनिवार्य है।

ISSN: 3049-2211

गेहूँ के एफिड्स और उनका एकीकृत प्रबंधन भारतीय कृषि पर ध्यान केंद्रित करने वाले वैश्विक

अमित कुमार– महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)
मनोज कुमार डॉ. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा (बिहार)
नीतू चौधरी स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, (राजस्थान)

1. परिचय

गेहूँ के एफिड्स गेहूँ (*ट्रिटिकम एस्टिवम*) के सबसे विनाशकारी कीटों में से हैं, जो दुनिया भर में उपज में महत्वपूर्ण नुकसान पहुँचाते हैं। भारत में, गेहूँ के एफिड्स विशेष रूप से भारत–गंगा के मैदानों (पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार) और प्रायः द्वीपीय क्षेत्रों (महाराष्ट्र, कर्नाटक) में समस्याग्रस्त हैं, जहाँ वे अनियंत्रित होने पर उपज को 20–40% तक कम कर सकते हैं। वैश्विक स्तर पर, ये कीट उत्तरी अमेरिका, यूरोप, चीन और ऑस्ट्रेलिया सहित प्रमुख गेहूँ उत्पादक क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं, जिससे सालाना 1 बिलियन डॉलर से अधिक का आर्थिक नुकसान होता है।

यह लेख गेहूँ के एफिड प्रबंधन का एक व्यापक विश्लेषण प्रदान करता है, जो वैश्विक सर्वोत्तम प्रथाओं की तुलना करते हुए भारतीय कृषि स्थितियों पर ध्यान केंद्रित करता है।

2. प्रमुख गेहूँ एफिड प्रजातियाँ– भारतीय संदर्भ के साथ वैश्विक वितरण

2.1. भारत में प्रमुख प्रजातियाँ

रोपालोसिफम पैडी (बर्ड चेरी–ओट एफिड) उत्तर भारत में सबसे अधिक प्रभावशाली, सिटोबियन एवेने (अंग्रेजी अनाज एफिड) पंजाब, हरियाणा चीन, ऑस्ट्रेलिया में, *स्किज़ाफिस ग्रैमिनम* (ग्रीनबग) राजस्थान में उभरता हुआ खतरा, पीली धारियों का कारण बनता है।

2.2. एफिड गतिकी पर जलवायु का प्रभाव

- भारत– फरवरी–मार्च (उत्तर भारत में गर्म तापमान) के दौरान चरम संक्रमण होता है।
- यूरोप/उत्तरी अमेरिका– वसंत (अप्रैल–मई) में प्रकोप आम है।
- ऑस्ट्रेलिया– सर्दियों के गेहूं को शरद ऋतु (मई–जून) में एफिड दबाव का सामना करना पड़ता है।

3. क्षति और आर्थिक प्रभाव– भारत बनाम वैश्विक

3.1. उपज हानि

- क्षेत्र अनुमानित उपज हानि प्रमुख योगदान कारक, उत्तर भारत 25–35% देर से बुवाई, उच्च नाइट्रोजन उपयोग।
- 15–25% आर. पैडी द्वारा BYDV संचरण।

3.2. वायरस संचरण

- भारत– जौ पीला बौना वायरस (BYDV) पंजाब में आर. पैडी के माध्यम से फैल रहा है।
- वैश्विक– गेहूं स्ट्रीक मोज़ेक वायरस (WSMV) अमेरिका के महान मैदानों में एक प्रमुख चिंता का विषय है।

4. एकीकृत कीट प्रबंधन– भारतीय नवाचार

4.1. सस्य नियंत्रण

- बुवाई तिथियों को समायोजित करना– पंजाब में जल्दी बुवाई (नवंबर) से एफिड का प्रकोप कम होता है।
- सरसों के साथ अंतर–फसल– उत्तर प्रदेश में जाल फसल के रूप में कार्य करता है।
- नीम केक का उपयोग– महाराष्ट्र में विकर्षक के रूप में लागू किया जाता है।
- गेहूं–मक्का रोटेशन एफिड जीवन चक्र को बाधित करता है।

4.2. जैविक नियंत्रण

- लेडीबर्ड बीटल (*कोक्सीनेला सेप्टमपंक्टाटा*)– उत्तर भारत में सबसे प्रभावी शिकारी।
- परजीवी ततैया (*एफिडियस कोलेमानी*)– आईसीएआर बड़े पैमाने पर पालन को बढ़ावा दे रहा है।
- एंटोमोपैथोजेनिक कवक (*ब्यूवेरिया बेसियाना*)– कर्नाटक में सफल परीक्षण।

4.3. रासायनिक नियंत्रण

- इमिडाक्लोप्रिड (बीज उपचार), मोनोक्रोटोफॉस (पर्ण स्प्रे)।
- सख्त नियोनिकोटिनोइड प्रतिबंध।
- सल्फॉक्साफ्लोर और फ्लोनिकैमिड का रोटेशन।

4.4. मेज़बान पौधे का प्रतिरोध

भारतीय किस्में

- एफिड–प्रतिरोधी– एचडी 2967, डीबीडब्ल्यू 303 (आईएआरआई द्वारा विकसित)।
- बीवाईडीवी–सहिष्णु– डब्ल्यूएच 1105, पीबीडब्ल्यू 725।

5. जलवायु परिवर्तन प्रभाव– तुलनात्मक विश्लेषण

5.1. भारत

- गर्म सर्दियाँ– पंजाब में एफिड की सक्रियता लंबे समय तक बनी रही।
- अनियमित वर्षा– एस. एवेने के पक्ष में आर्द्रता में वृद्धि।

6. भविष्य की रणनीतियाँ

- निगरानी को मजबूत करें– यूके–शैली के सक्शन ट्रैप नेटवर्क को अपनाएँ।
- बायोकंट्रोल स्केलिंग– चीन के सामूहिक पालन कार्यक्रमों से सीखें।
- प्रतिरोध प्रबंधन– ऑस्ट्रेलियाई शैली के कीटनाशक रोटेशन प्रोटोकॉल को लागू करें।

■■■

कृषक मंच - जून 2025 संस्करण

लोकप्रिय लेखों के लिए आमंत्रण

वेबसाइट: krishakmanch.com

अंतिम तिथि: 25 जून 2025

लेख के विषय:

- कृषि विज्ञान के प्रमुख क्षेत्र: एग्रोनॉमी, बागवानी, कीट विज्ञान, रोग विज्ञान, कृषि प्रसार, कृषि अर्थशास्त्र, जैव प्रौद्योगिकी आदि।
- नवीनतम कृषि तकनीकें।
- फसल प्रबंधन एवं रोग नियंत्रण।
- जैविक खेती एवं प्राकृतिक कृषि।
- जल संरक्षण व सिंचाई तकनीकें।
- सरकारी योजनाएं।

Whatsaap
Clik to Chat

हमारे व्हाट्सएप समूह से जुड़ें: